

जिनेन्द्र अर्चना

सम्पादक :

अखिल बंसल

एम.ए. (हिन्दी), डिप्लोमा-पत्रकारिता

प्रकाशक :

विमल जैन ग्रन्थमाला प्रकाशन, दिल्ली

एवं

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

प्रथम बत्तीस संस्करण : १ लाख ७७ हजार
(६ अक्टूबर से अद्यतन)
तेतीसवाँ संस्करण : ५ हजार
(१ जनवरी, २००७)

योग : १ लाख ८२ हजार

मूल्य : तीस रुपए

मुद्रक :
प्रिण्ट 'ओ' लैण्ड,
बाईस गोदाम, जयपुर

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची	
१. श्री दि. जैन नेमिनाथ पंचकल्याणक समिति, किशनगढ़	२,१०१
२. श्री कुन्दकुन्द दि. जैन मुमुक्षु मण्डल ट्रस्ट, टीकमगढ़	२,१०१
३. श्री दि. जैन समाज, पीसांगन	२,१०१
४. श्री दि. जैन समाज नर्सिंगपुरा मन्दिर मन्दसौर	२,१०१
५. श्री शिकोहाबाद पंचकल्याणक समिति शिकोहाबाद	१,१०१
६. श्री मनोहरलाल काला अमृत महोत्सव समिति, इन्दौर	१,१०१
७. श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन मुमुक्षु ट्रस्ट, दादर मुम्बई	१,००१
८. श्री दि. जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट साधनानगर, इन्दौर	१,००१
९. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. विमलकुमारजी जैन, 'नीरू केमिकल्स, दिल्ली	१,००१
१०. श्रीशान्तिनाथजी सोनाज परिवार अकलूज	५०१
११. श्रीमती श्रीकान्ताबाई ध.प. पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर	५०१
कुल राशि	१४,५११

प्रकाशकीय

(तेतीसवाँ पुनर्सम्पादित संस्करण)

देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान की अर्चना में समर्पित सर्वाधिक बिक्रीवाली कृति 'जिनेन्द्र अर्चना' को नये परिवेश में प्रस्तुत करते हुए हम अत्यधिक गौरव एवं प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

जिनेन्द्र पूजन गृहस्थ/श्रावक के षट् आवश्यक कर्तव्यों में सर्वप्रथम कर्तव्य है। पापों से बचने हेतु तथा वीतराग भाव के पोषण हेतु यही एकमात्र आलम्बन है, अतः समाज में हजारों वर्षों से भाव एवं द्रव्यपूजन की परम्परा चली आ रही है।

आद्य-स्तुतिकार आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभू-स्तोत्र जैसी अमर कृतियों में जैन न्याय सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए उत्कृष्टतम स्तुतियों की रचना की है। अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों ने भी अपनी काव्यप्रतिभा से विभिन्न प्रकार की पूजाएँ रचकर पूजन साहित्य को समृद्ध किया है, जिनमें पण्डित ध्यानतराय एवं पण्डित बृन्दावनदासजी विशेष उल्लेखनीय हैं।

मुद्रण प्रणाली के विकास ने पूजन संग्रहों के प्रकाशनों को सुलभ अवसर प्रदान किये हैं; अतः समाज में सैकड़ों पूजन संग्रह उपलब्ध हैं। इस संकलन का प्रथम संस्करण ६ अक्टूबर १९८१ को प्रकाशित किया गया था। तब से अबतक इसके बत्तीस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जो इसकी उपयोगिता एवं लोकप्रियता का प्रबल प्रमाण हैं। समाज ने अपनी जिनेन्द्र भक्ति की अभिव्यक्ति और पुष्टि में इस संकलन का भरपूर उपयोग करके हमें प्रोत्साहित किया है, अतः हम उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

हमारे अनेक सुधी पाठकों द्वारा इसके संबंध में समय-समय पर अनेक सुझाव प्राप्त होते रहे हैं, जिन्हें ध्यान में रखते हुए इस तैतीसवें संस्करण में आवश्यक संशोधन कर दिये गये हैं तथा आवश्यक सामग्री जोड़कर इसे और भी अधिक उपयोगी बना दिया गया है।

श्री अखिल बंसल इस कृति के आद्य सम्पादक हैं। कृति के नवीन संस्करण के परिमार्जन तथा इसे आकर्षक कलेवर में प्रस्तुत करने में उनका विशेष योगदान रहा है; अतः हम उनके आभारी हैं।

तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर एवं जिनेन्द्र वन्दना के समावेश से यह संकलन विशेष उपयोगी तो था ही, बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत नीरव निर्झर तथा सिद्ध पूजन और श्री राजमलजी पवैया कृत प्रमुख पर्व पूजनों को सम्मिलित किये जाने से कृति की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है। पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल कृत जिनपूजन रहस्य को भी इसमें समाविष्ट कर इसे पूर्ण रूप से उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। भक्ति खण्ड को भी पुनर्सम्पादित किया गया है। प्रत्येक पूजन को नये पृष्ठ से आरम्भ किया गया है तथा खाली स्थानों में महत्त्वपूर्ण भक्तियाँ दी गई हैं। भक्तियों को वर्गीकृत करके उनकी सूची भी अलग से दी गई है, अतः उनका उपयोग जिनेन्द्र भक्ति में सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

यद्यपि पूजनों, स्तवनों एवं जिनवाणी संग्रह की समाज में कमी नहीं है, फिर भी इस संकलन की अपनी एक अलग विशेषता है। यही कारण है कि समाज की प्रबल माँग निरन्तर बनी रहती है और इसकी पूर्ति में हमें लगभग हर वर्ष ही इसे प्रकाशित करना पड़ता है। अबतक यह कृति १ लाख ७२ हजार की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी है, जो इसकी लोकप्रियता को दर्शाती है। इस कृति को और अधिक उपयोगी बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

आशा है, प्रस्तुत तेतीसवाँ संस्करण पाठकों को अधिकतम सन्तुष्ट करते हुए उनकी साधना में विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

विमलकुमार जैन

मंत्री

विमल जैन ग्रन्थमाला प्रकाशन, दिल्ली

ब्र. यशपाल जैन (एम.ए.)

प्रकाशन मंत्री

पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

विषय-सूची

(स्तवन खण्ड)

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१. जिनपूजन रहस्य	पं. रतनचंद भारिल्ल	९
२. जिनेन्द्र वंदना	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	४९
३. दर्शन पाठ	-	५४
४. देवस्तुति (प्रभु पतितपावन...)	श्री बुधजन	५५
५. दर्शनस्तुति (अतिपुण्य उदय...)	श्री अमरचन्दजी	५६
६. दर्शन स्तुति (सकलज्ञेय...)	पं. दौलतरामजी	५७
७. देव स्तुति (अहो जगत...)	पं. भूधरदासजी	५९
८. दर्शन दशक (देखे श्री जिनराज...)	श्री साहिबराय जी	६०
९. दर्शन पाठ (दर्शन श्री देवाधिदेव का...)	श्री युगलजी	६३
१०. आराधना पाठ (मैं देव नित...)	पं. द्यानतराय	६४
११. देव स्तुति (वीतराग सर्वज्ञ हितकर...)	-	६५
(पूजन खण्ड)		
१२. जलाभिषेक पाठ	श्री हरजसरायजी	६६
१३. प्रतिमा प्रक्षाल पाठ	पं. अभयकुमारजी	६९
१४. विनयपाठ	-	७२
१५. पूजा पीठिका (संस्कृत)	-	७४
१६. पूजा पीठिका (हिन्दी)	-	७८
१७. स्वस्ति मंगल पाठ	-	८०
१८. देव-शास्त्र-गुरु पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	८३
१९. देव-शास्त्र-गुरु पूजन	श्री युगलजी	८७
२०. देव-शास्त्र-गुरु पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	९१
२१. देव-शास्त्र-गुरु पूजन	अखिल बंसल	९५
२२. समुच्चय पूजन	ब्र. सरदारमलजी	९८
२३. पंच परमेष्ठी पूजन	श्री राजमलजी पवैया	१०१
२४. सिद्धपूजन	आचार्य पद्मनन्दि	१०४
२५. सिद्धपूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	१०९
२६. सिद्धपूजन	श्री युगलजी	११३
२७. विदेहक्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थकर पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	११७
२८. श्री वर्तमान चौबीसी पूजन	कविवर वृन्दावनदासजी	१२०
२९. सीमन्धर पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	१२३
३०. दशलक्षण धर्म पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१२७
३१. सम्यक्चरत्नत्रय धर्म पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१३३
३२. सोलहकारण पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१४१
३३. पंचमेरु पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१४४

३४.	नन्दीश्वरद्वीप पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१४७
३५.	श्री आदिनाथ जिनपूजन	पण्डित जिनेश्वरदासजी	१५१
३६.	श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन	पण्डित वृन्दावनदासजी	१५५
३७.	चैतन्य वन्दना	पं. अभयकुमारजी	१५९
३८.	श्री शान्तिनाथ जिनपूजन	पण्डित वृन्दावनदासजी	१६०
३९.	श्री पार्श्वनाथ जिनपूजन	पण्डित बख्तावरमलजी	१६४
४०.	श्री वर्धमान जिनपूजन	पण्डित वृन्दावनदासजी	१६९
४१.	श्री महावीर पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	१७३
४२.	श्री महावीर पूजन	अखिल बंसल	१७७
४३.	श्री पंच बालयति जिनपूजन	पं. अभयकुमारजी	१८०
४४.	श्री बाहुबली पूजन	श्री राजमल पवैया	१८४
४५.	श्री सप्तऋषि पूजन	पण्डित रंगलालजी	१८८
४६.	सरस्वती पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१९२
४७.	अक्षय तृतीया पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	१९५
४८.	रक्षाबन्धन पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	१९९
४९.	वीरशासन जयन्ती पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२०४
५०.	क्षमावाणी पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२०८
५१.	दीपमालिका पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२१४
५२.	श्रुतपंचमी पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२१९
५३.	निर्वाणक्षेत्र पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	२२३
५४.	निर्वाण काण्ड भाषा	भैया भगवतीदासजी	२२६
५५.	स्वयंभू-स्तोत्र (भाषा)	श्री द्यानतरायजी	२२८
५६.	चौबीस तीर्थकरों के अर्घ्य	-	२३०
५७.	अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ्य	-	२३७
५८.	अर्घ्यावलि	-	२३८
५९.	शान्ति पाठ (संस्कृत)	-	२४४
६०.	शान्ति पाठ (हिन्दी)	-	२४६
६१.	शान्ति पाठ (लघु)	-	२४८

(आध्यात्मिक पाठ एवं भावना खण्ड)

६२.	नीरव निर्झर (सामायिक पाठ)	श्री युगलजी	२४९
६३.	अमूल्य तत्त्व विचार	अनुवाद - श्री युगलजी	२५२
६४.	आलोचना पाठ	श्री जौहरीलालजी	२५३
६५.	मेरी भावना	श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार	२५६
६६.	वैराग्य भावना (वज्रनाभ चक्रवर्ती)	अनु. पण्डित भूधरदासजी	२५८
६७.	छहढाला	पण्डित दौलतरामजी	२६१
६८.	भक्तामर-स्तोत्र	आचार्य मानतुंग	२७३
६९.	भक्तामर-स्तोत्र (हिन्दी)	पण्डित हेमराजजी	२८०
७०.	पार्श्वनाथ-स्तोत्र	पं. द्यानतरायजी	२८७
७१.	महावीराष्टक स्तोत्र	कविवर भागचन्द	२८८

७२.	मंगलाष्टक	-	२८९
७३.	समाधिमरण (हिन्दी)	पण्डित सूरचन्दजी	२९१
७४.	बारह भावना	पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा	३००
७५.	बारह भावना	पण्डित भूधरदासजी	३०१
७६.	तत्त्वार्थ सूत्र	आचार्य उमास्वामी	३०२

(भक्ति खण्ड)

देव भक्ति

७७.	एक तुम्हीं आधार हो जग में...	सौभाग्यमलजी	३१४
७८.	तिहारे ध्यान की मूरत...	-	३१४
७९.	मेरे मन मन्दिर में आन...	-	३१५
८०.	निरखो अंग-अंग जिनवर...	-	३१५
८१.	आओ जिन मन्दिर में आओ...	-	३१६
८२.	प्रभु हम सब का एक...	पंकजजी	३१७
८३.	धन्य धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है...	सौभाग्यमलजी	३१७
८४.	वीर प्रभु के ये बोल तेरा प्रभु...	-	३१८
८५.	आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे आये...	पंकजजी	३१८

शास्त्र भक्ति

८६.	हे जिनवाणी माता तुमको लाखों...	शिवरामजी	३१९
८७.	जिनवर चरण भक्ति वर गंगा...	मानिकचंदजी	३१९
८८.	जिनवाणी माता रत्नत्रय...	जयकुमारजी	३२०
८९.	जिन-वैन सुनत मोरी भूल...	पं. दौलतरामजी	३२१
९०.	जिनवाणी माता दर्शन की...	-	३२१
९१.	महिमा है अगम जिनागम की...	पं. भागचंदजी	३२२
९२.	चरणों में आ पड़ा...	सुदर्शनजी	३२२
९३.	नित पीज्यो धीधारी...	पं. दौलतरामजी	३२२
९४.	साँची तो गंगा यह...	पं. भागचन्दजी	३२३
९५.	धन्य धन्य है घड़ी आज की...	पं. भागचन्दजी	३२३
९६.	केवल-कन्ये...	ज्ञानानन्दजी	३२४
९७.	धन्य-धन्य जिनवाणी माता...	-	३२५
९८.	धन्य-धन्य वीतराग वाणी...	-	३२५
९९.	सुनकर वाणी जिनवर की म्हारे...	पं. बुधजन	३२६
१००.	मुख ओंकार धुनि...	पं. बनारसीदास	३२६
१०१.	भ्रात जिनवाणी सम नहीं आन...	नन्दलालजी	३२७

गुरु भक्ति

१०२.	ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं...	पं. भागचन्दजी	३२८
१०३.	धन-धन जैनी साधु जगत के...	पं. भागचन्दजी	३२८
१०४.	परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...	पं. द्यानतरायजी	३२८

द्रव्यपूजा, अभ्युत्थान- प्रदक्षिणीकरणप्रणमनादिका कायक्रिया च वाचा गुणसंस्तवनं च । भावपूजा मनसा तद्गुणानुस्मरणम् ।”^१

प्रश्न - भक्ति और पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर - अरहन्त आदि के गुणों में अनुराग भक्ति है । पूजा के दो प्रकार हैं - द्रव्यपूजा और भावपूजा ।

अरहन्त आदि का उद्देश्य करके गंध, पुष्प, धूप, अक्षतादि अर्पित करना द्रव्यपूजा है तथा उनके आदर में खड़े होना, प्रदक्षिणा करना, प्रणाम करना आदि शारीरिक क्रिया और वचन से गुणों का स्तवन भी द्रव्यपूजा है तथा मन से उनके गुणों का स्मरण भावपूजा है ।”

द्रव्यपूजा व भावपूजा के सम्बन्ध में पं. सदासुखदासजी लिखते हैं :-

“अरहन्त के प्रतिबिम्ब का वचन द्वार से स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना, अंजुलि मस्तक चढ़ाना, जल-चन्दनादिक अष्टद्रव्य चढ़ाना; सो द्रव्यपूजा है ।

अरहन्त के गुणों में एकाग्रचित्त होकर, अन्य समस्त विकल्प छोड़कर गुणों में अनुरागी होना तथा अरहन्त के प्रतिबिम्ब का ध्यान करना; सो भावपूजा है ।”^२

उक्त कथन में एक बात अत्यन्त स्पष्ट रूप से कही गई है कि - अष्टद्रव्य से की गई पूजन तो द्रव्यपूजन है ही, साथ ही देव-शास्त्र-गुरु की वन्दना करना, नमस्कार करना, प्रदक्षिणा देना, स्तुति करना आदि क्रियायें भी द्रव्यपूजन हैं ।

जिनेन्द्र भगवान की पूजन भगवान को प्रसन्न करने के लिए नहीं, अपने चित्त की प्रसन्नता के लिए की जाती है; क्योंकि जिनेन्द्र भगवान तो वीतरागी होने से किसी से प्रसन्न या नाराज होते ही नहीं हैं । हाँ, उनके गुणस्मरण से हमारा मन अवश्य पवित्र हो जाता है ।

इस सन्दर्भ में आचार्य समन्तभद्र का निम्न कथन द्रष्टव्य है -

१. भगवती आराधना, गाथा ४६ की विजयोदया टीका ।

२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक ११९ की टीका, पृष्ठ २०८ ।

“न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्त वैरे ।
तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः, पुनाति चित्तं दुरिताज्जनेभ्यः ॥”

यद्यपि जिनेन्द्र भगवान वीतराग हैं, अतः उन्हें अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा वैर रहित हैं, अतः निन्दा से भी उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है; तथापि उनके पवित्र गुणों का स्मरण पापियों के पापरूप मल से मलिन मन को निर्मल कर देता है ।”

कुछ लोग कहते हैं कि - यद्यपि भगवान कुछ देते नहीं हैं, तथापि उनकी भक्ति से कुछ न कुछ मिलता अवश्य है । इसप्रकार वे जिनपूजा को प्रकारान्तर से भोगसामग्री की प्राप्ति से जोड़ देते हैं; किन्तु उक्त छन्द में तो अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा गया है कि - उनकी भक्ति से भक्त का मन निर्मल हो जाता है । मन का निर्मल हो जाना ही जिनपूजा-जिनभक्ति का सच्चा फल है । ज्ञानीजन तो अशुभभाव व तीव्रराग से बचने के लिए ही भक्ति करते हैं ।

इस सन्दर्भ में आचार्य अमृतचन्द की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

“अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति ।
उपरितन-भूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वर-
विनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ।

इसप्रकार का राग मुख्यरूप से मात्र भक्ति की प्रधानता और स्थूल लक्ष्यवाले अज्ञानियों को होता है । उच्चभूमिका में स्थिति न हो तो तब तक अस्थान का राग रोकने अथवा तीव्ररागज्वर मिटाने के हेतु से कदाचित् ज्ञानियों को भी होता है ।”^२

उक्त दोनों कथनों पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट होती है कि आचार्य अमृतचन्द्र तो कुस्थान में राग के निषेध और तीव्ररागज्वर निवारण की बात कहकर नास्ति से बात करते हैं और उसी बात को आचार्य समन्तभद्र चित्त की निर्मलता की बात कहकर अस्ति से कथन करते हैं ।

१. स्वयंभू स्तोत्र, छन्द ५७ ।

२. पंचास्तिकाय, गाथा १३६ की टीका ।

इसप्रकार पूजन एवं भक्ति का भाव मुख्यरूप से अशुभराग व तीव्रराग से बचाकर शुभराग व मंदरागरूप निर्मलता प्रदान करता है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि भक्ति और पूजन का भाव मुख्यरूप से शुभभाव है, तथापि ज्ञानी धर्मात्मा मात्र शुभ की प्राप्ति के लिए पूजन-भक्ति नहीं करता, वह तो जिनेन्द्र की मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान जिनेन्द्र देव को एवं जिनेन्द्र देव के माध्यम से निज परमात्मस्वभाव को जानकर, पहिचान कर, उसी में रम जाना, जम जाना चाहता है।

तिलोपपण्णत्ती आदि ग्रन्थों में सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारणों में जिनबिम्ब दर्शन को भी एक कारण बताया है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जिनपूजा अशुभभाव से बचने के साथ-साथ सम्यक्त्वोत्पत्ति, भेदविज्ञान, आत्मानुभूति एवं वीतरागता की वृद्धि में भी निमित्तभूत है। स्तुतियों और भजनों की निम्न पंक्तियों से यह बात स्पष्ट है -

“तुम गुण चिन्तत निज-पर विवेक प्रकटै, विघटें आपद अनेक।

--

--

-

जय परम शान्त मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।^१

हे भगवन्! आपके निर्मल गुणों के चिन्तन-स्मरण करने से अपने व पराये की पहचान हो जाती है, निज क्या है और पर क्या है - ऐसा भेदज्ञान प्रकट हो जाता है और उससे अनेक आपत्तियों का विनाश हो जाता है।

हे प्रभो! आपकी परम शान्त मुद्रा भव्यजीवों को आत्मानुभूति में निमित्त कारण है।”

इस सन्दर्भ में निम्नांकित भजन की पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं -

“निरखत जिनचन्द्र-वदन स्व-पद सुरुचि आई।

प्रकटी निज-आन की पिछान ज्ञान-भान की

१. पण्डित दौलतराम कृत देवस्तुति

२. पण्डित दौलतराम कृत आध्यात्मिक भजन।

कला उदोत होत काम जामिनी पलाई ॥निरखत.॥^२

जिनेन्द्र भगवान का भक्त जिनप्रतिमा के दर्शन के निमित्त से हुई अपूर्व उपलब्धि से भावविभोर होकर कहता है कि - जिनेन्द्र भगवान के मुखचन्द्र के निरखते ही मुझे अपने स्वरूप को समझने की रुचि जागृत हो गई तथा ज्ञानरूपी सूर्य की कला के प्रकट होने से मेरा मोह एवं काम भी पलायन कर गया है।”

ज्ञानीजन यद्यपि लौकिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए जिनेन्द्र-भक्ति कदापि नहीं करते, तथापि मूल प्रयोजनों की पूर्ति के साथ-साथ उनके लौकिक प्रयोजनों की पूर्ति भी होती है; क्योंकि शुभभाव और मन्दराग की स्थिति में नहीं चाहते हुए भी जो पुण्य बँधता है, उसके उदयानुसार यथासमय थोड़ी-बहुत लौकिक अनुकूलतायें भी प्राप्त होती ही हैं। लौकिक अनुकूलता का अर्थ मात्र अनुकूल भोगसामग्री की प्राप्ति ही नहीं है, अपितु धर्मसाधन और आत्मसाधन के अनुकूल वातावरण की प्राप्ति भी है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जिनेन्द्र भगवान का भक्त भोगों का भिखारी तो होता ही नहीं है, वह भगवान से भोगसामग्री की माँग तो करता ही नहीं है; साथ में उसकी भावना मात्र शुभभाव की प्राप्ति की भी नहीं होती, वह तो एकमात्र वीतरागभाव का ही इच्छुक होता है; तथापि उसे पूजन और भक्ति के काल में सहज हुए शुभभावानुसार पुण्य-बंध भी होता है और तदनुसार आत्मकल्याण की निमित्तभूत पारमार्थिक अनुकूलताएँ व अन्य लौकिक अनुकूलताएँ भी प्राप्त होती हैं।

पूजा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है। पूजा में पूज्य, पूजक एवं पूजा - ये तीन अंग प्रमुख हैं। जिसतरह सफल शिक्षा के लिए सुयोग्य शिक्षक, सजग शिक्षार्थी एवं सार्थक शिक्षा का सु-समायोजन आवश्यक है; उसी तरह पूजा का पूरा फल प्राप्त करने के लिए पूज्य, पूजक एवं पूजा का सुन्दर समायोजन जरूरी है। इसके बिना पूजा की सार्थकता संभव नहीं है। पूज्य सदृश पूर्णता एवं पवित्रता

प्राप्त करना ही पूजा की सार्थकता है।

जब पूजक पूजा करते समय पूज्य परमात्मा के गुणगान करता है, उनके गुणों का स्मरण करता है, उनके परमात्मा बनने की प्रक्रिया पर विचार करता है, परमात्मा के जीवनदर्शन का आद्योपान्त अवलोकन करता है, अरहन्त, सिद्ध और साधुओं के स्वरूप से अपने स्वभाव को समझने का प्रयत्न करता है; तब उसे सहज ही समझ में आने लगता है कि - “अहो! मैं भी तो स्वभाव से परमात्मा की भाँति ही अनन्त असीम शक्तियों का संग्रहालय हूँ, अनन्त गुणों का गोदाम हूँ, मेरा स्वरूप भी तो सिद्ध-सदृश ही है। मैं स्वभाव की सामर्थ्य से सदा भरपूर हूँ। मुझ में परलक्ष्यी ज्ञान के कारण जो मोह-राग-द्वेष हो रहे हैं, वे दुःखरूप हैं - इसप्रकार सोचते-विचारते उसका ध्यान जब भगवान की पूर्व पर्यायों पर जाता है, तब उसे ख्याल आता है कि - “जब शेर जैसा क्रूर पशु भी कालान्तर में परमात्मा बन सकता है तो मैं क्यों नहीं बन सकता? सभी पूज्य परमात्मा अपनी पूर्व पर्यायों में तो मेरे जैसे ही पामर थे! जब वे अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर परमात्मा बन गये तो मैं भी अपने स्वभाव के आश्रय से पूर्णता व पवित्रता प्राप्त कर परमात्मा बन सकता हूँ।” इसप्रकार की चिन्तनधारा ही भक्त को जिनदर्शन से निजदर्शन कराती है, यही आत्मदर्शन होने की प्रक्रिया है, पूजन की सार्थक प्रक्रिया है।

यद्यपि पूजा स्वयं में एक रागात्मक वृत्ति है, तथापि वीतराग देव की पूजा करते समय पूजक का लक्ष्य यदा-कदा अपने वीतराग स्वभाव की ओर भी झुकता है। बस, यही पूजा की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

पूजा में शुभराग की मुख्यता रहने से पूजक अशुभरागरूप तीव्रकषायादि पाप परिणति से बचा रहता है तथा वीतरागी परमात्मा की उपासना से सांसारिक विषय-वासना के संस्कार भी क्रमशः क्षीण होते जाते हैं और स्वभाव-सन्मुखता की रुचि से आत्मबल में भी वृद्धि होती है; क्योंकि रुचि-अनुयायी वीर्य स्फुरित होता है। अन्ततोगत्वा पूजा के रागभाव का भी अभाव करके पूजक वीतराग-सर्वज्ञ पद प्राप्त कर स्वयं पूज्य हो जाता है। इसी अपेक्षा से जिनवाणी में पूजा को

परम्परा से भक्ति का कारण कहा गया है। (चौबीस तीर्थकर पूजा)

१४ // जिनेन्द्र अर्चना

निश्चयपूजा

निश्चयनय से तो पूज्य-पूजक में कोई भेद ही दिखाई नहीं देता। अतः इस दृष्टि से तो पूजा का व्यवहार ही संभव नहीं है। निश्चयपूजा के सम्बन्ध में आचार्यों ने जो मंतव्य प्रकट किये हैं, उनमें कुछ प्रमुख आचार्यों के विचार द्रष्टव्य हैं -

आचार्य योगीन्दु देव लिखते हैं -

“मणु मिलिययु परमेसरहं परमेसरु वि मणस्स ।

बीहि वि समरसि हूबाहूँ पूज्ज चढावहु कस्स ॥^१

विकल्परूप मन भगवान आत्मा से मिल गया, तन्मय हो गया और परमेश्वरस्वरूप भगवान आत्मा भी मन से मिल गया। जब दोनों ही सम-रस हो गये तो अब कौन/किसकी पूजा करे? अर्थात् निश्चयदृष्टि से देखने पर पूज्य-पूजक का भेद ही दिखाई नहीं देता तो किसको अर्घ्य चढ़ाया जाये?”

इसीतरह आचार्य पूज्यपाद लिखते हैं -

“यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः ।

अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥^२

स्वभाव से जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो स्वानुभवगम्य मैं हूँ, वही परमात्मा है; इसलिए मैं ही मेरे द्वारा उपास्य हूँ, दूसरा कोई अन्य नहीं।^३

इसी बात को कुन्दकुन्दाचार्य देव ने अभेदनय से इसप्रकार कहा है -

“अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेठी ।

ते वि हु चिट्ठिहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥^३

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु - ये जो पंच परमेष्ठी हैं; वे आत्मा में ही चेष्टारूप हैं, आत्मा ही की अवस्थायें हैं; इसलिए मेरे आत्मा ही का मुझे शरण है।^३

इसप्रकार यह स्पष्ट होता है कि अपने आत्मा में ही उपास्य-उपासक भाव घटित करना निश्चयपूजा है।

१. परमात्मप्रकाश १/१२३/२ २. समाधितंत्र ३१ ३. अष्टपाहुडः मोक्ष पाहुड, मूल श्लोक १०४

जिनेन्द्र अर्चना // १५

व्यवहारपूजा : भेद-प्रभेद

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव; पूज्य, पूजक, पूजा; नाम, स्थापना आदि तथा इन्द्र, चक्रवर्ती आदि द्वारा की जानेवाली पूजा की अपेक्षा व्यवहार पूजन के अनेक भेद-प्रभेद हैं।

पूजा को द्रव्यपूजा और भावपूजा में विभाजित करते हुए आचार्य अमितगति उपासकाचार में लिखते हैं -

“वचो विग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते।

तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥”

वचन और काय को अन्य व्यापारों से हटाकर स्तुत्य (उपास्य) के प्रति एकाग्र करने को द्रव्यपूजा कहते हैं और मन की नाना प्रकार से विकल्पजनित व्यग्रता को दूर करके उसे ध्यान तथा गुण-चिन्तनादि द्वारा स्तुत्य में लीन करने को भावपूजा कहते हैं।”

आचार्य अमितगति ने अमितगति श्रावकाचार में एवं आचार्य वसुनन्दि ने वसुनन्दि श्रावकाचार में द्रव्यपूजा के निम्नांकित तीन भेद किये हैं^१ -

(१) सचित्त पूजा (२) अचित्त पूजा (३) मिश्र पूजा।

१. सचित्त पूजा - प्रत्यक्ष उपस्थित समवशरण में विराजमान जिनेन्द्र भगवान और निर्ग्रन्थ गुरु का यथायोग्य पूजन करना सचित्त द्रव्यपूजा है।

२. अचित्त पूजा - तीर्थकर के शरीर (प्रतिमा) की और द्रव्यश्रुत (लिपिबद्ध शास्त्र) की पूजन करना अचित्त द्रव्यपूजा है।

३. मिश्र पूजा - उपर्युक्त दोनों प्रकार की पूजा मिश्र द्रव्यपूजा है।

सचित्त फलादि से पूजन करनेवालों को उपर्युक्त कथन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसमें अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सचित्तता सामग्री की नहीं, आराध्य की होना चाहिए। सचित्त माने साक्षात् सशरीर जिनेन्द्र भगवान और अचित्त माने उनकी प्रतिमा।

१. स्तुतिविद्या, प्रस्तावना, पृष्ठ १० : जुगलकिशोर मुख्तार।

२. अमितगति श्रावकाचार, १२-१३ एवं वसुनन्दि श्रावकाचार, श्लोक ४४९-५०

महापुराण में द्रव्यपूजा के पाँच प्रकार बताये हैं^१ -

१. सदार्चन (नित्यमह) २. चतुर्मुख ३. कल्पद्रुम ४. आष्टाह्निक ५. ऐन्द्रध्वज।

१. सदार्चन पूजा - इसे नित्यमह तथा नित्यनियम पूजा भी कहते हैं। यह चार प्रकार से की जाती है।

(अ) अपने घर से अष्ट द्रव्य ले जाकर जिनालय में जिनेन्द्रदेव की पूजा करना।

(आ) जिन प्रतिमा एवं जिन मन्दिर का निर्माण करना।

(इ) दानपत्र लिखकर ग्राम-खेत आदि का दान देना।

(ई) मुनिराजों को आहार दान देना।

२. चतुर्मुख (सर्वतोभद्र) पूजा - मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा महापूजा करना।

३. कल्पद्रुम पूजा - चक्रवर्ती राजा द्वारा किमिच्छिक दान देने के साथ जिनेन्द्र भगवान का पूजोत्सव करना।

४. आष्टाह्निक पूजा - आष्टाह्निक पर्व में सर्व साधारण के द्वारा पूजा का आयोजन करना।

५. ऐन्द्रध्वज पूजा - यह पूजा इन्द्रों द्वारा की जाती है।

उपर्युक्त पाँच प्रकार की पूजनों में हम लोग सामान्यजन प्रतिदिन केवल सदार्चन (नित्यमह) का 'अ' भाग ही करते हैं। शेष पूजनों भी यथा-अवसर यथायोग्य व्यक्तियों द्वारा की जाती हैं।

वसुनन्दि श्रावकाचार में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से द्रव्यपूजा के छह भेद कहे हैं -

१. महापुराण श्रावकाचार, सर्ग ३८/२६-३३

१. नाम पूजा – अरिहन्तादि का नाम उच्चारण करके विशुद्ध प्रदेश में जो पुष्पक्षेपण किये जाते हैं, वह नाम पूजा है।

२. स्थापना पूजा – यह दो प्रकार की है – सदभाव स्थापना और असदभाव स्थापना। आकारवान वस्तु में अरहन्तादि के गुणों का आरोपण करना सदभाव स्थापना है तथा अक्षतादि में अपनी बुद्धि से वह परिकल्पना करना कि यह अमुक देवता है, असदभाव स्थापना है। असदभाव स्थापना मूर्ति की उपस्थिति में नहीं की जाती।^१

३. द्रव्य पूजा – अरहन्तादि को गंध, पुष्प, धूप, अक्षतादि समर्पण करना तथा उठकर खड़े होना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना आदि शारीरिक क्रियाओं तथा वचनों से स्तवन करना द्रव्य पूजा है।

४. भाव पूजा – परमभक्ति से अनन्त चतुष्टयादि गुणों के कीर्तन द्वारा त्रिकाल वन्दना करना निश्चय भावपूजा है। पंच नमस्कार मंत्र का जाप करना तथा जिनेन्द्र का स्तवन अर्थात् गुणस्मरण करना भी भाव पूजा है तथा पिण्डस्थ, पदस्थ आदि चार प्रकार के ध्यान को भी भाव पूजा कहा गया है।

५. क्षेत्र पूजा – तीर्थकरों की पंचकल्याणक भूमि में स्थित तीर्थक्षेत्रों की पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करना क्षेत्र पूजा है।

६. काल पूजा – तीर्थकरों की पंचकल्याणक तिथियों के अनुसार पूजन करना तथा पर्व के दिनों में विशेष पूजायें करना काल पूजा है।^२

जिनपूजा में अन्तरंग भावों की ही प्रधानता है; क्योंकि वीतरागी होने से

भगवत

अहो! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किसप्रकार होगा? इसलिए बहुत कहने से क्या? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है।
- मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ १९२

१. वसुनन्दि श्रावकाचार, ३८३-३८४

२. भगवती आराधना, गाथा ४६ विजयोदया टीका एवं वसुनन्दि श्रावकाचार, ४५६ से ४५८।

पूजन विधि और उसके अंग

पूजन विधि और उसके अंगों में देश, काल और वातावरण के अनुसार यत्किंचित् परिवर्तन होते रहे हैं, परन्तु उन परिवर्तनों से पूजन की मूलभूत भावना, प्रयोजन और उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं आया। उद्देश्य में अन्तर आने का कारण पूजन की विभिन्न पद्धतियाँ नहीं, बल्कि तद्विषयक अज्ञान होता है। जहाँ पूजन ही साध्य समझ ली गई हो या किसी विधि विशेष को अपने पंथ की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया गया हो, वहाँ मूलभूत प्रयोजन की पूर्ति की संभावनायें क्षीण हो जाती हैं।

वर्तमान पूजन-विधि में पूजन के कहीं पाँच अंगों का और कहीं छह अंगों का उल्लेख मिलता है। दोनों ही प्रकार के अंगों में कुछ-कुछ नाम साम्य होने पर भी व्याख्याओं में मौलिक अन्तर है। दोनों ही मान्यतायें व विधियाँ वर्तमान में प्रचलित हैं। अतः दोनों ही विधियाँ विचारणीय हैं।

पण्डित सदासुखदासजी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार की टीका में पूजन के पाँच अंगों का निर्देश किया है।^१ इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं :-

“व्यवहार में पूजन के पाँच अंगनि की प्रवृत्ति देखिये है -

(१) आह्वानन (२) स्थापन (३) सन्निधापन या सन्निधिकरण (४) पूजन (५) विसर्जन।

सो भावनि के जोड़वा वास्ते आह्वाननादिकनि में पुष्पक्षेपण करिये हैं। पुष्पनि कूँ प्रतिमा नहीं जानें हैं। ए तो आह्वाननादिकनि का संकल्प तैं पुष्पांजलि क्षेपण है। पूजन में पाठ रच्या होय तो स्थापना करले, नाही होय तो नहीं करे। अनेकान्तिनि के सर्वथा पक्ष नाही। भगवान परमात्मा तो सिद्ध लोक में हैं, एक प्रदेश भी स्थान तैं चले नाही, परन्तु तदाकार प्रतिबिम्ब सूँ ध्यान जोड़ने के अर्थि साक्षात् अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु रूप का प्रतिमा में निश्चय करि प्रतिबिम्ब में ध्यान स्तवन करना।”^२

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पण्डित सदासुखदासजी, श्लोक ११९, पृष्ठ २१४

२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक ११९ की टीका पृष्ठ २१४

अभिषेक या प्रक्षाल

सर्वप्रथम यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उक्त पाँचों अंगों में अभिषेक या प्रक्षाल सम्मिलित नहीं है। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि अभिषेक या प्रक्षाल के बिना भी पूजन अपूर्ण नहीं है। प्रत्येक पूजक को अभिषेक करना अनिवार्य नहीं है, आवश्यक भी नहीं है। बार-बार प्रक्षाल करने से प्रतिमा के अंगोपांग अल्पकाल में ही घिस जाते हैं, पाषाण भी खिरने लगता है; अतः प्रतिमा की सुरक्षा की दृष्टि से भी प्रतिदिन दिन में एक बार ही शुद्ध प्रासुक जल से प्रक्षाल होना चाहिए। मूर्तिमान तो त्रिकाल पवित्र ही है, केवल मूर्ति में लगे रजकणों की स्वच्छता हेतु प्रक्षाल किया जाता है। मूर्ति को स्वच्छ रखने में शिथिलता न आने पाये, एतदर्थ प्रतिदिन प्रक्षाल करने का नियम है।

वर्तमान में अभिषेक के विषय में दो मत पाये जाते हैं। प्रथम मत के अनुसार पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होने के बाद जिनप्रतिमा समवशरण के प्रतीक जिनमन्दिर में विराजमान अरहंत व सिद्ध परमात्मा की प्रतीक मानी जाती है। इसलिए उस अरहंत की प्रतिमा का अभिषेक जन्मकल्याणक के अभिषेक का प्रतीक नहीं हो सकता।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में अरहंत परमात्मा की प्रतिमा के अभिषेक के विषय में लिखा है - “यद्यपि भगवान के अभिषेक का प्रयोजन नहीं, तथापि पूजक के प्रक्षाल करते समय ऐसा भक्तिरूप उत्साह का भाव होता है - जो मैं अरहंत कूँ ही साक्षात् स्पर्श करूँ हूँ।”^१

कविवर हरजसराय कृत अभिषेक पाठ में तो यह भाव और सशक्त ढंग से व्यक्त हुआ है। वे लिखते हैं -

“पापाचरण तजि नह्वन करता, चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का, मानो नह्वन परसन करूँ।।
ऐसे विमल परिणाम होते, अशुभ नशि शुभबन्धतैं।
विधि^२ अशुभ नसि शुभ बन्धतैं, ह्वै शर्म^३ सब विधि^४ नासतैं।”

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार : पं. सदासुखदासजी की टीका पृष्ठ २०८

२. कर्म ३. सुख ४. सब प्रकार से

आगे अभिषेक करता हुआ पूजक अपनी पर्याय को पवित्र व धन्य अनुभव करता हुआ कहता है -

“पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं। पावन पान^१ भये तुम चरनन परस तैं।।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं। पावन रसना मानी तुम गुन-गान तैं।।
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरन धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी।।
धनि धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणिकुंभ भरि भक्ति करी।।”

इसके भी आगे पूजक प्रक्षाल का प्रयोजन प्रगट करता हुआ कहता है -
“तुम तो सहज पवित्र, यही निश्चय भयो। तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन^२ ठयो।।
मैं मलीन रागादिक मल करि ह्वै रह्यो। महामलिन तन में वसुविधि वश दुःख सह्यो।।”^३

इसके साथ-साथ प्रतिदिन प्रक्षाल करने का दूसरा प्रयोजन परम-शान्त मुद्रा युक्त वीतरागी प्रतिमा की वीतरागता, मनोज्ञता व निर्मलता बनाये रखने के लिए यत्नाचारपूर्वक केवल छने या लोंग आदि द्वारा प्रासुक पानी से प्रतिमा को परिमार्जित करके साफ-सुथरा रखना भी है।

दुग्धाभिषेक करने वालों को यदि यह भ्रम हो कि देवेन्द्र क्षीरसागर के दुग्ध से भगवान का अभिषेक करते हैं तो उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि क्षीरसागर में त्रस-स्थावर जन्तुओं से रहित शुद्ध निर्मल जल ही होता है, दूध नहीं। क्षीरसागर तो केवल नामनिक्षेप से उस समुद्र का नाम है।

द्वितीय मत के अनुसार अभिषेक जन्मकल्याणक का प्रतीक माना गया है। सोमदेवसूरि (जो मूलसंघ के आचार्य नहीं हैं) द्वितीय मत का अनुकरण करने वाले जान पड़ते हैं; क्योंकि उन्होंने अभिषेक विधि का विधान करते समय वे सब क्रियायें बतलाई हैं, जो जन्माभिषेक के समय होती हैं। यह जन्माभिषेक भी इन्द्र और देवगण द्वारा क्षीरसागर के जीव-जन्तु रहित निर्मल जल से ही किया जाता है, दूध-दही आदि से नहीं।

यहाँ ज्ञातव्य यह है कि दोनों ही मान्यताओं के अनुसार जिनप्रतिमा का अभिषेक या प्रक्षाल केवल शुद्ध प्रासुक निर्मल जल से ही किया जाना चाहिए।

१. ज्ञान, २. परिमार्जन करना, अंगोछे से पोंछना, ३. बृहज्जिनवाणी संग्रह : टोडरमल स्मारक, पृष्ठ

पूजन के लिए प्रासुक अष्ट द्रव्य

पूजन के विविध आलम्बनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलम्बन अष्ट द्रव्य माने जाते हैं। अष्ट द्रव्य चढ़ाने के सम्बन्ध में वर्तमान में स्पष्ट दो मत हैं। प्रथम पक्ष के अनुसार तो अचित्त प्रासुक द्रव्य ही पूजन के योग्य हैं। यह पक्ष सचित्त द्रव्य को हिंसामूलक होने से स्वीकार नहीं करता तथा दूसरा पक्ष पूजन सामग्री में सचित्त अर्थात् हरितकाय फल-फूल एवं पकवान व मिष्ठानन को भी पूजन के अष्ट द्रव्य में सम्मिलित करता है।

इस सम्बन्ध में यदि हम अपना पक्षव्यामोह छोड़कर साम्यभाव से आगम का अध्ययन करें और उनकी नय विवक्षा को समझने का प्रयत्न करें तो हमें बहुत कुछ समाधान मिल सकता है।

पूजन के छन्दों के आधार पर जिन लोगों का यह आग्रह रहता है कि - जब हम विविध फलों और पकवानों के नाम बोलते हैं तो फिर उन्हें ही क्यों न चढ़ायें? भले ही वे सचित्त हों, अशुद्ध हों।

उन्से हमारा अनुरोध है कि हमारी पूजा में आद्योपान्त एक वस्तु भी तो वास्तविक नहीं है। स्वयं हमारे पूज्य परमात्मा की स्थापना एक पाषाण की प्रतिमा में की गई है। देवकृत दिव्य समवशरण की स्थापना सीमेंट, ईट-पत्थर के बने मन्दिर में की गई है। स्वयं पूजक भी असली इन्द्र कहाँ है? जब आद्योपान्त सभी में स्थापना निक्षेप से काम चलाया गया है तो अकेले अष्ट द्रव्य के सम्बन्ध में ही हिंसामूलक सचित्त मौलिक वस्तु काम में लेने का हठाग्रह क्यों?

सचित्त पूजा करनेवाले क्या कभी पूजा में उल्लिखित सामग्री के अनुसार पूरा निर्वाह कर पाते हैं? जरा विचार करें - पूजाओं के पदों में तो कंचन-झारी में क्षीरसागर का जल एवं रत्नदीप समर्पित करने की तथा नाना प्रकार के सरस व्यंजनों से पूजा करने की बात आती है; पर आज क्षीरसागर का जल तो क्या कुँ का पानी कठिन हो रहा है और रत्नदीप तो हमने केवल पुस्तकों में ही देखे हैं। आखिर में जब सभी जगह कल्पना से ही काम चलाना पड़ता है, तब

२४ //जिनेन्द्र अर्चना

हम क्यों नहीं अहिंसामूलक शुद्ध वस्तु से ही काम चलायें? आगमानुसार भी पूजा में तो भावों की ही मुख्यता होती है, द्रव्य की नहीं। द्रव्य तो आलम्बन मात्र है। जैसे विशुद्ध परिणाम होंगे, फल तो वैसा ही मिलेगा।

कहा भी है -

“जीवन के परिणामन की अति विचित्रता देखहु प्राणी।

बन्ध-मोक्ष परिणामन ही तैं कहत सदा है जिनवाणी।।”

यद्यपि यह बात सच है कि पद्मपुराण, वसुनन्दि श्रावकाचार, सागार धर्माभूत, तिलोयपण्णत्ति और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पाठों में सचित्त द्रव्यों द्वारा की गई पूजा की खूब खुलकर चर्चा है, परन्तु क्या कभी आपने यह देखने व समझने का भी प्रयास किया है कि ये पूजायें किसने, कब, कहाँ कीं और किन-किन द्रव्यों से कीं?

लगभग सभी चर्चयें इन्द्रध्वज, अष्टाह्निका, कल्पद्रुम, सदार्चन एवं चतुर्मुख पूजाओं से सम्बन्धित हैं, जो सर्वशक्तिसम्पन्न इन्द्रगण, देवगण, पुराणपुरुष, चक्रवर्ती एवं मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा दिव्य निर्जन्तुक सामग्री से की जाती हैं। हम सब स्वयं अकृत्रिम चैत्यालयों के अंत में अंचलिका के रूप में पढ़ते हैं - “चहुविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण णहाणेण णिच्चकालं अच्चन्ति पुज्जन्ति वन्दन्ति णमस्सन्ति। अहमवि इह सन्तोतत्थ संताई णिच्चकालं अच्चमि पुज्जेमि वन्दामि णमस्सामि” अर्थात् सभी सामग्री देवोपनीत कल्पवृक्षों से प्राप्त दिव्य प्रासुक निर्जन्तुक होती है।^१

इस सम्बन्ध में पण्डित सदासुखदासजी के निम्नांकित विचार दृष्टव्य हैं -

“इस कलिकाल में भगवान प्ररूप्या नयविभाग तो समझे नहीं, अर शास्त्रनि में प्ररूपण किया तिस कथनी कूं नयविभाग तैं जाने नहीं, अर अपनी कल्पना तैं ही पक्षग्रहण करि यथेच्छ प्रवर्ते हैं।”^२

१. “वर नीर क्षीर समुद्र घट भरि अग्र तसु बहु विधि नचूँ

- देव-शास्त्र-गुरु पूजा : कविवर दानतराय

२. तिलोयपण्णत्ति ३/२२३-२२६ में भी इसी तरह का उल्लेख है।

३. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पण्डित सदासुखदास, श्लोक १११, पृष्ठ-२११

जिनेन्द्र अर्चना // २५

सचित्त द्रव्यों से पूजन करने का निषेध करते हुए वे आगे लिखते हैं -

“इस दुषमकाल में विकलत्रय जीवनि की उत्पत्ति बहुत है, अर पुष्पनि में बेंद्री, तेन्द्री, चौइन्द्री, पंचेन्द्री त्रस जीव प्रगट नेत्रनि के गोचर दौड़ते देखिये हैं...। अर पुष्पादि में त्रस जीव तो बहुत ही हैं। अर बादर निगोद जीव अनंत हैं...। तातैं ज्ञानी धर्म बुद्धि हैं ते तो समस्त कार्य यत्नाचार तैं करो....।”^१

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि आगम में सचित्त व अचित्त द्रव्य से पूजन का विधान है, वह कहाँ किस अपेक्षा है - यह समझकर हमें अचित्त द्रव्य से ही पूजा करना चाहिए। पण्डित सदासुखदासजी के ही शब्दों में -

“जे सचित्त के दोष तैं भयभीत हैं, यत्नाचारी हैं, ते तो प्रासुक जल, गन्ध, अक्षत कूं चन्दन कुमकुमादि तैं लिप्त करि, सुगन्ध रंगीन चावलों में पुष्पनि का संकल्प कर पुष्पनि तैं पूजैं हैं तथा आगम में कहे सुवर्ण के पुष्प व रूपा के पुष्प तथा रत्नजटित सुवर्ण के पुष्प तथा लवंगादि अनेक मनोहर पुष्पनि करि पूजन करें हैं, बहुरि रत्ननि के दीपक व सुवर्ण रूपामय दीपकनि करि पूजन करें हैं तथा बादाम, जायफल, पूंगीफलादि विशुद्ध प्रासुक फलनि तैं पूजन करें हैं।”^२

यद्यपि पूजन में सर्वत्र भावों की ही प्रधानता है, तथापि अष्ट द्रव्य भी हमारे उपयोग की विशेष स्थिरता के लिए अवलम्बन के रूप में पूजन के आवश्यक अंग माने गये हैं। आगम में भी पूजन के अष्ट द्रव्यों का विधान है, किन्तु पूजन-सामग्री में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि ऐसी कोई वस्तु पूजन के अष्ट द्रव्य में सम्मिलित न हो, जो हिंसामूलक हो और जिसके कारण लोक की जगत की संचालन व्यवस्था में कोई बाधा या अवरोध उत्पन्न होता हो।

यही कारण है कि गेहूँ, चना, जौ आदि अनाजों को पूजन-सामग्री में सम्मिलित नहीं किया गया है; क्योंकि वे बीज हैं, बोने पर उगते हैं। देश की आवश्यकता की पूर्ति के साथ-साथ समृद्धि के भी साधन हैं। इसी हेतु से दूध दही-घी आदि का भी अभिषेक, पूजन एवं हवन आदि में उपयोग नहीं होना चाहिए। तथा

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पण्डित सदासुखदास, श्लोक ११९, पृष्ठ २११

२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पण्डित सदासुखदास, श्लोक ११९, पृष्ठ २०६

इसीकारण निष्ठुष-निर्मल-शुभ्र तण्डुल और जल-चन्दन-नैवेद्य-दीप-धूप-फल आदि प्राकृतिक व सूखे-पुराने प्रासुक पदार्थ ही पूजन के योग्य कहे गये हैं।

भले ही जल-चन्दन-नैवेद्य-दीप-धूप और फल आदि लौकिक दृष्टि से सोना-चाँदी एवं जवाहरात की भाँति बहुमूल्य नहीं हों, किन्तु जीवनोपयोगी होने से ये पदार्थ बहुमूल्य ही नहीं, बल्कि अमूल्य भी हैं। जल भले ही बिना मूल्य के मिल जाता हो, परन्तु जल के बिना जीवन संभव नहीं है, इसीकारण उसे जीवन भी कहा है। तथा चन्दन, अक्षत, दीप, धूप, पुष्प, फलादि सामग्री भले ही जल की भाँति जीवनोपयोगी न हो, तथापि “कर्पूरं घनसारं च हिमं सेवते पुण्यवान्” की उक्त्यनुसार इसका सेवन (उपभोग) पुण्यवानों को ही प्राप्त होता है। इसतरह यद्यपि ये पदार्थ भी सम्मानसूचक होने से पूजन के योग्य माने गये हैं, किन्तु अहिंसा की दृष्टि से इन सबका प्रासुक व निर्जन्तुक होना आवश्यक है।

जब हमारे यहाँ कोई विशिष्ट अतिथि (मेहमान) आते हैं तो हम उनके स्वागत में अपने घर में उपलब्ध उत्कृष्टतम पदार्थ उनकी सेवा में समर्पित करते हैं। स्वयं तो स्टील की थाली में भोजन करते हैं किन्तु उन्हें चाँदी की थाली में कराते हैं। स्वयं पुराने कम्बल-चादर ओढ़ते-बिछाते हैं और मेहमान के लिए नये-नये वस्त्र-बर्तन आदि काम में लेते हैं। उसीतरह जिनेन्द्र भगवान की पूजन के लिए आचार्यों ने उत्तमोत्तम बहुमूल्य जीवनोपयोगी और सम्मानसूचक पदार्थों को समर्पण करने की भावना प्रकट की है।

परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जो-जो पदार्थ पूजनों में लिखे हैं, वे सभी पदार्थ उसी रूप में पूजन में अनिवार्य रूप से होने ही चाहिए। जिसके पास जो संभव हो, अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार प्राप्त पूजन सामग्री द्वारा पूजन की जा सकती है। इतना अवश्य है कि वह पूजन सामग्री अचित्त, निर्जन्तुक-प्रासुक व पवित्र हो।

मोक्षमार्गप्रकाशक में श्री टोडरमलजी ने भी यह लिखा है -

“केवली के व प्रतिमा के आगे अनुराग से उत्तम वस्तु रखने का दोष नहीं है। धर्मानुराग से जीवन का भला होता है।”^१

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पाँचवाँ अधिकार, पृष्ठ १६४, पंक्ति ९

इसी अभिप्राय से आचार्यों ने अष्टद्रव्यों में उत्तमोत्तम कल्पनायें की हैं - मणिजड़ित सोने की झारी और उसमें क्षीरसागर या गंगा का निर्मल जल, रत्नजड़ित मणिदीप, उत्तमोत्तम पकवान एवं सुस्वादु सरस फल आदि ।

यही कारण है कि अब तक उपलब्ध प्राचीन पूजन साहित्य में अधिकांशतः यही धारा प्राप्त होती है । सब कुछ बढ़िया होने पर भी इसमें कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि हम जिनेन्द्र देव के नहीं, उन्हें चढ़ाई जानेवाली सामग्री के गीत गा रहे हैं । कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि हम जल-फल आदि की प्रशंसा में इतने मग्न हो जाते हैं कि भगवान को भी भूल जाते हैं ।

शायद हमारी इसी कमजोरी को ध्यान में रखकर आज जो नई आध्यात्मिक धारार्यें विकसित हो रही हैं, उनमें जल-फलादि सामग्री के गुणगान की अपेक्षा उनको प्रतीक बनाकर जिनेन्द्र भगवान के अधिक गुण गाये गये हैं तथा जीवनोपयोगी बहुमूल्य सुन्दरतम जलादि सामग्री की अनुशंसा की अपेक्षा सुख और शान्ति की प्राप्ति में उनकी निरर्थकता अधिक बताई गई है; इसी कारण उसके त्याग की भावना भी भायी गई है ।

यह बात भी नहीं है कि यह धारा आधुनिक युग की ही देन हो । क्षीण रूप में ही सही, पर यह प्राचीन काल में भी प्रवाहित थी । इस युग में यह मूलधारा के रूप में चल रही है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान में हिन्दी पूजन साहित्य में मुख्यरूप से तीन धारार्यें प्रवाहित हो रही हैं :-

१. पहली तो चढ़ाये जानेवाले द्रव्य की विशेषताओं की निरूपक ।
२. दूसरी द्रव्यों के माध्यम से पूज्य परमात्मा के गुणानुवाद करने वाली ।
३. तीसरी लौकिक जीवनोपयोगी एवं सम्मानसूचक बहुमूल्य पदार्थों की आध्यात्मिक जीवन की समृद्धि में निरर्थकता बताकर उन्हें त्यागने की भावना व्यक्त करनेवाली ।

प्रथम धारा की बात तो स्पष्ट हो ही चुकी । दूसरी धारा में कविवर दानतराय का निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :-

२८ // जिनेन्द्र अर्चना

“उत्तम अक्षत जिनराज पुंज धरें सोहें ।

सब जीते अक्ष समाज तुम-सम अरु कोहै ॥”^१

उक्त छन्द में अक्षतों (सफेद चावलों) के अवलम्बन से जिनराज को ही उत्तम अक्षत कहा गया है ।

यहाँ कवि का कहना है कि - हे जिनराज! अनन्तगुणों के समूह (पुंज) से शोभायमान, कभी भी नाश को प्राप्त न होनेवाले अक्षय स्वरूप होने से आप ही वस्तुतः उत्तम अक्षत हो । आपने समस्त अक्षसमाज (इन्द्रिय समूह) को जीत लिया है; अतः हे जितेन्द्रियजिन! आपके समान इस जगत में और कौन हो सकता है? सचमुच देखा जाये तो आप ही सच्चे अक्षत हो, अखण्ड व अविनाशी हो ।

उक्त सन्दर्भ में निम्नांकित पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं :-

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर तुम ही अखण्ड अविनाशी हो ।^२

प्रभुवर तुम जल-से शीतल हो, जल-से निर्मल अविकारी हो ।

मिथ्यामल धोने को प्रभुवर, तुम ही तो मल परिहारी हो ॥^३

तीसरी धारा में आनेवाली सर्वस्व समर्पण की भावना से ओत-प्रोत निम्नांकित प्राचीन पूजन की पंक्तियाँ भी अपने आप में अद्भुत हैं :-

यह अरघ कियो निज हेत, तुम को अरपत हों ।

द्यानत कीनो शिवखेत, भूमि समरपत हों ॥^४

इस सन्दर्भ में आधुनिक पूजन की निम्न पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं -

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता ।

अरे! पूर्णता पाने में, क्या इसकी है आवश्यकता ॥

मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया ।

बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया ॥^५

श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत देव-शास्त्र-गुरु-पूजन में यह भावना भी सशक्त रूप में व्यक्त हुई है :-

१. कविवर दानतराय : नन्दीश्वर पूजन । २. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : सिद्ध पूजन ।

३. वही : सीमन्धर पूजन । ४. कविवर दानतराय : नन्दीश्वर पूजन ।

५. हुकमचन्द भारिल्ल : देव-शास्त्र-गुरु-पूजन ।

जिनेन्द्र अर्चना // २९

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु भूख न मेरी शांति हुई।
 तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ॥
 युग-युग से इच्छा-सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
 पंचेन्द्रिय मन के षट्स तज, अनुपम रस पीने आया हूँ ॥

जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
 झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा ॥*
 अत एव प्रभो ! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
 तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर दीप जलाने आया हूँ ॥

डॉ. भारिल्ल की पूजनों में यह ध्वनि लगभग सर्वत्र ही सुनाई देती है।

सिद्ध पूजन के अर्घ्य के छन्द में यह बात सटीक रूप में व्यक्त हुई है :-

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
 पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की ॥
 सुरभी धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया।
 आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया ॥
 जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
 सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सदज्ञान हुआ ॥
 जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
 होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

पूजन पढ़ते समय जब तक उसका भाव पूरी तरह ध्यान में न आये, तब तक उसमें जैसा मन लगना चाहिए, वैसा लगता नहीं है। इसके लिए आवश्यक यह है कि पूजन साहित्य सरल और सुबोध भाषा में लिखा जाये। यद्यपि प्राचीन पूजनें अपने युग की अत्यन्त सरल एवं सुबोध ही हैं, तथापि काल परिवर्तन के प्रवाह से उनकी भाषा वर्तमान युग के पाठकों को सहज ग्राह्य नहीं रही है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि अधिक से अधिक

* लेखक द्वारा उक्त छन्द में परिवर्तन कर निम्नप्रकार कर दिया गया है।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अँधियारा।
 श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा ॥

पूजनें आज की सरल-सुबोध भाषा में भी लिखी जायें और उनका भी प्रचार-प्रसार हो; साथ ही यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि नये और सरल-सुबोध के व्यामोह में हम अपनी पुरातन निधि को भी न बिसर जायें। आवश्यकता समुचित सन्तुलन की है। न तो हम प्राचीनता के व्यामोह में विकास को अवरुद्ध करें और न ही सरलता के व्यामोह में पुरातन को विस्मृति के गर्त में डाल दें। नई पूजनें बनाने के व्यामोह में आगम-विरुद्ध रचना न हो जाये - इसका भी ध्यान रखना अत्यावश्यक है।

प्राचीन इतिहास सुरक्षित रखने के साथ-साथ हर युग में नया इतिहास भी बनना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि भविष्य के लोग कहें कि इस युग में ऐसे भक्त ही नहीं थे, जो पूजनें लिखते। नवनिर्माण की दृष्टि से भी युग को समृद्ध होना चाहिए और प्राचीनता को सँजोने में भी पीछे नहीं रहना चाहिए।

प्राचीन भक्ति साहित्य में समागत कुछ कथनों पर आज बहुत नाक-भौंह सिकोड़ी जाती है। कहा जाता है कि उस पर कर्तावाद का असर है; क्योंकि उसमें भगवान को दीन-दयाल, अधम-उधारक, पतित-पावन आदि कहा गया है। भगवान से पार लगाने की प्रार्थनायें भी कम नहीं की गई हैं; पर ये सब व्यवहार के कथन हैं। व्यवहार से इसप्रकार के कथन जिनागम में भी पाये जाते हैं; पर उन्हें औपचारिक कथन ही समझना चाहिए।

मूलाचार के पाँचवें अधिकार की १३७वें गाथा में ऐसे कथनों को असत्य-मृषा भाषा के प्रभेदों में याचिनी भाषा बतलाया है। जिस भाषा के द्वारा किसी से याचना-प्रार्थना की जाती है। जो न सत्य हो और न झूठ हो।^१ पाँचवें अधिकार की १२९वीं गाथा के अर्थ में भाषा समिति के रूप में भी यही बताया है।^२ इससे ये कथन निर्दोष ही सिद्ध होते हैं।

उक्त सन्दर्भ में पण्डित टोडरमलजी का निम्नांकित कथन भी द्रष्टव्य है -

“तथा उन अरहन्तों को स्वर्ग-मोक्षदाता, दीनदयाल, अधम-उधारक,

१. मूलाचार, पृष्ठ १८९ (शास्त्रागार प्रति, शोलापुर)

२. मूलाचार, पृष्ठ १८६

पतित-पावन मानता है; उसीप्रकार यह भी कर्तृत्व बुद्धि से ईश्वर को मानता है। ऐसा नहीं जानता कि फल तो अपने परिणामों का लगता है, अरहन्त तो उनको निमित्तमात्र है; इसलिए उपचार द्वारा वे विशेषण सम्भव होते हैं।

अपने परिणाम शुद्ध हुए बिना अरहन्त ही स्वर्ग-मोक्षादि के दाता नहीं हैं। तथा अरहन्तादिक के नामादिक से श्वानादिक ने स्वर्ग प्राप्त किया, वहाँ नामादिक का ही अतिशय मानते हैं; परन्तु बिना परिणाम के नाम लेनेवाले को भी स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती, तब सुननेवाले को कैसे होगी? श्वानादिक को नाम सुनने के निमित्त से कोई मन्दकषाय रूप भाव हुए हैं, उनका फल स्वर्ग हुआ; उपचार से नाम ही की मुख्यता की है।

तथा अरहन्तादिक के नाम-पूजनादि से अनिष्ट सामग्री का नाश तथा इष्ट सामग्री की प्राप्ति मानकर रोगादि मिटाने के अर्थ व धनादिक की प्राप्ति के अर्थ नाम लेता है व पूजनादि करता है। सो इष्ट-अनिष्ट का कारण तो पूर्व कर्म का उदय है, अरहन्त तो कर्ता हैं नहीं। अरहन्तादिक की भक्ति रूप शुभोपयोग परिणामों से पूर्व पाप के संक्रमणादि हो जाते हैं, इसलिए उपचार से अनिष्ट के नाश का व इष्ट की प्राप्ति का कारण अरहन्तादिक की भक्ति कही जाती है; परन्तु जो जीव प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजन सहित भक्ति करता है, उसके तो पाप ही का अभिप्राय हुआ कांक्षा, विचिकित्सारूप भाव हुए; उनसे पूर्वपाप के संक्रमणादि कैसे होंगे? इसलिए उसका कार्य सिद्ध नहीं हुआ।

तथा कितने ही जीव भक्ति को मुक्ति का कारण जानकर वहाँ अति अनुरागी होकर प्रवर्तते हैं। वह तो अन्यमती जैसे भक्ति से मुक्ति मानते हैं, वैसा ही इनके भी श्रद्धान हुआ; परन्तु भक्ति तो रागरूप है और राग से बन्ध है, इसलिए मोक्ष का कारण नहीं है। जब राग का उदय आता है, तब भक्ति न करें तो पापानुराग हो, इसलिए अशुभ राग छोड़ने के लिए ज्ञानी भक्ति में प्रवर्तते हैं और मोक्षमार्ग का बाह्य निमित्त मात्र भी जानते हैं; परन्तु यहाँ ही उपादेयपना

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २२२

मानकर संतुष्ट नहीं होते, शुद्धोपयोग के उद्यमी रहते हैं।”^१

पूजारी को पूज्य के स्वरूप का भी सच्चा परिज्ञान होना चाहिए। जिसकी पूजा की जा रही है, उसके स्वरूप की सच्ची जानकारी हुए बिना भी पूजा और पूजारियों की भावना में अनेक विकृतियाँ पनपने लगती हैं।

प्रसन्नता की बात है कि आधुनिक युग में लिखी जानेवाली पूजनों में इस बात का भी ध्यान रखा जा रहा है। पूज्यों में मुख्यतः देव-शास्त्र-गुरु ही आते हैं। आधुनिक युग में लिखी गई देव-शास्त्र-गुरु पूजनों की जयमालाओं में उनकी भक्ति करते हुए उनके स्वरूप पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

गुरु के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाली निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा दिग्दर्शन करने वाला है ॥
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो ॥
हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिन्तन करते हो ॥
करते तप शैल नदी तट पर, तरु तल वर्षा की झड़ियों में।
समता रस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में ॥^१
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिग्म्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन ॥
निर्ग्रन्थ दिग्म्बर सद्ज्ञानी, स्वात्म में सदा विचरते जो।
ज्ञानी ध्यानी समरस सानी, द्वादश विधि तप नित करते जो ॥^२

सच्चे देव के स्वरूप को समझने में हमसे क्या भूल हो जाती है और उसका

१. श्री जुगलकिशोर 'युगल' : देव-शास्त्र-गुरु पूजन, जयमाला।

२. वही।

क्या परिणाम निकलता है? यह बात निम्नांकित पंक्तियों में कितनी सहजता से व्यक्त हो गई है -

करुणानिधि तुम को समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा ।
 भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा ॥
 तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना ।
 तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहचाना ॥^१

इसीप्रकार शास्त्र के यथार्थ स्वरूप को दर्शानेवाली निम्नांकित पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं -

महिमा है अगम जिनागम की, महिमा है..... ॥टेक ॥
 जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूर्ति आत्म की ।
 रागादिक दुःख कारन जानैं, त्याग दीनि बुद्धि भ्रम की ।
 ज्ञान ज्योति जागी उर अन्तर, रुचि वाढी पुनि शम-दम की ॥^२
 वीतरागता की पोषक ही जिनवाणी कहलाती है ।
 यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर जो हमको दिखलाती है ॥^३
 सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग ।
 रवि-शशि न हरे सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति लाय ॥^४

देखो, शास्त्र का स्वरूप लिखते हुए सभी कवियों ने इसी बात पर ही जोर दिया है कि जिनवाणी रूपी गंगा वह है जो - अनेकान्तमय वस्तुस्वरूप को दर्शानेवाली हो, भेदविज्ञान प्रकट करनेवाली हो, मिथ्यात्वरूप महातम का विनाश करनेवाली हो, विविध नयों की कल्लोलों से विमल हो, स्याद्वादमय व सप्तभंग से सहित हो और वीतरागता की पोषक हो । जो राग-द्वेष को बढ़ाने में निमित्त बने, वह वीतराग वाणी नहीं हो सकती ।

जिनवाणी की परीक्षा उपर्युक्त लक्षणों से ही होनी चाहिए । किसी स्थान विशेष से कर्मकार होने से उसमें भक्तिपूज्य, अभक्ति प्रकट करना या सच्चे-

बुढ़े कवि का भ्रमचन्द्री जिनवाणी स्वप्न से उचित नहीं है । ●

३. डा. हुकमचन्द भारिल्ल : देव-शास्त्र-गुरु पूजन, जयमाला ।

४. कविवर दानतराय : देव-शास्त्र-गुरु पूजन, जयमाला ।

सिद्धचक्र-मण्डल विधान : अनुशीलन

हिन्दी पूजन-भक्ति साहित्य में एक विधा मंडल पूजन-विधान की भी है । ये मंडल पूजन-विधान विशेष अवसरों पर विशेष आयोजनों के साथ किये जाते हैं । इस विधा के कवि संतलाल, टेकचन्द, स्वरूपचन्द, वृन्दावन आदि हैं ।

पूजा-विधानों में सिद्धचक्रविधान का सर्वाधिक महत्त्व है; क्योंकि सिद्धचक्रविधान का प्रयोजन सिद्धों के गुणों का स्मरण करते हुए अपनी आत्मा को सिद्धदशा तक पहुँचाना होता है और आत्मा के लिए इससे उत्कृष्ट अन्य उद्देश्य नहीं हो सकता ।

हिन्दी विधानों में सिद्धचक्रमंडल विधान के रचयिता कविवर संतलाल का नाम सर्वोपरि है; क्योंकि उनकी यह रचना साहित्यिक दृष्टि से तो उत्तम है ही, साथ ही भक्ति काव्य होते हुए भी आध्यात्मिक एवं तात्त्विक भावों से भरपूर है । एक-एक अर्घ्य के पद का अर्थगांभीर्य एवं विषयवस्तु विचारणीय है ।

तत्त्वज्ञानपरक, जाग्रतविवेक, विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि एवं निष्काम भक्ति की त्रिवेणी जैसी इसमें प्रवाहित हुई है, वैसी अन्यत्र दिखाई नहीं देती । निश्चय ही हिन्दी विधान-पूजा साहित्य में कविवर संतलाल का उल्लेखनीय योगदान है ।

इस विधान की आठों जयमालायें एक से बढ़कर एक हैं । सभी में सिद्धों का विविध आयामों से तत्त्वज्ञानपरक गुणगान किया गया है । इनमें न तो कहीं लौकिक कामनाओं की पूर्ति विषयक चाह ही प्रकट की गई है और न प्रलोभन ही दिया गया है ।

पहली जयमाला में ही सिद्धभक्ति के माध्यम से गुणस्थान क्रम में संसारी से सिद्ध बनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया अति संक्षेप में जिस खूबी से दर्शाई गई है, वह द्रष्टव्य है :-

जिनेन्द्र अर्चना // ३५

३४ // जिनेन्द्र अर्चना

जय करण कृपाण सु प्रथम वार, मिथ्यात्व-सुभट कीनो प्रहार ।
दृढ़ कोट विपर्ययमति उलंघि, पायो समकित थल थिर अभंग ॥१॥
निजपर विवेक अन्तर पुनीत, आतमरुचि वरती राजनीत ।
जगविभव विभाव असार एह, स्वातम सुखरस विपरीत देह ॥२॥
तिन नाशन लीनो दृढ़ सँभार, शुद्धोपयोग चित्त चरण सार ।
निर्ग्रन्थ कठिन मारग अनूप, हिंसादिक टारन सुलभ रूप ॥३॥
लखि मोह शत्रु परचण्ड जोर, तिस हनन शुक्ल दल ध्यान जोर ।
आनन्द वीररस हिये छाया, क्षायिक श्रेणी आरम्भ थाय ॥४॥

सांगरूपक के रूप में इसमें जीवराजा और मोहराजा के मध्य हुए घमासान युद्ध का चित्रण किया गया है। सर्वप्रथम जीवरूप राजा अधःकरण, अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण गुणस्थान रूप कृपाण से मिथ्यात्व रूप सुभट पर प्रहार करता है तथा विपरीत बुद्धिरूप ऊँचे कोट को लाँघकर सम्यग्दर्शन रूप सुखद, समतल स्थित भूमि पर अधिकार कर लेता है और आत्मरुचि एवं स्वपर-भेदविज्ञान की सात्विक राजनीति आरम्भ हो जाती है तथा आत्मस्वभाव के विपरीत जगत के वैभव और विभावभावों के अभाव के लिए शुद्धोपयोग को दृढ़ता से धारण करता है।

अन्त में आनन्दरूप वीर रस से उत्साहित होकर जीवराजा ने मोहरूप राजा को सदा के लिए मृत्यु की गोद में सुला दिया और तेरहवें गुणस्थान की पावन भूमि में प्रवेश कर अनंत आनंद का अनुभव करते हुए अपनी सनातन रीति के अनुसार मोहराजा के उपकरणरूप शेष अघातिया कर्मों का भी अभाव करके अनंतकाल के लिए सिद्धपुर का अखण्ड साम्राज्य प्राप्त कर लिया।

इसप्रकार हम देखते हैं कि इस पूजन में तत्त्वज्ञान तो पद-पद में दर्शनीय है ही, भक्ति-भावना की भी कहीं कोई कमी नहीं है। तत्त्वज्ञान या अध्यात्म के कारण भक्ति रस के प्रवाह में कहीं कोई अवरोध या व्यवधान नहीं आने पाया है। इसप्रकार संत कवि कृत सिद्धचक्र मण्डल विधान पूजन-विधान साहित्य में अभूतपूर्व-अद्वितीय उपलब्धि है। इसको जितने अधिक ध्यान से पढ़ा व सुना जा सके, उतना ही अधिक लाभ होगा।

जैनदर्शन अकर्त्तावादी दर्शन है। इसके अनुसार प्रत्येक आत्मा स्वभाव से स्वयं भगवान है और यदि जिनागम में बताये मार्ग पर चले, स्वयं को जाने, पहचाने और स्वयं में ही समा जाये तो प्रकट रूप से पर्याय में भी परमात्मा बन जाता है।

जैनदर्शन के अनुसार परमात्मा बनने की प्रक्रिया पूर्णतः स्वावलम्बन पर आधारित है। किसी की कृपा से दुःखों से मुक्ति संभव नहीं है; अतः जैनदर्शन का भक्ति साहित्य अन्य दर्शनों के समान कर्त्तावाद का पोषक नहीं हो सकता।

प्रायः देखा जाता है कि इस विधान को करनेवाले अधिकांश व्यक्ति अपने मन में व्यक्त या अव्यक्त रूप में कोई न कोई मनौती या लौकिक प्रयोजन की पूर्ति की भावना संजोये रहते हैं, जो कभी-कभी उनकी वाणी में भी व्यक्त हो जाती है।

वे कहते हैं - “जब हमारा बच्चा बीमार पड़ा था, बचने की आशा नहीं रही, डॉक्टरों ने जवाब दे दिया तो हमने भगवान से मन ही मन यह प्रार्थना की - हे प्रभु! यदि बच्चा अच्छा हो गया तो सिद्धचक्र मण्डल विधान रचायेंगे।”

“जब हमारे यहाँ आयकर वालों की रेड़ पड़ी (छापा पड़ा) और हमारा सारा सोना-चाँदी एवं जवाहरात जब्त हो गया, तब हमने यह संकल्प किया था कि- यदि माल वापस मिल गया तो....।”

“जब गुस्से में आकर हमारे बच्चे से गोली चल जाने से किसी की मौत हो गई और उससे फौजदारी का केस दायर हो गया, तब हमने यह भावना भायी कि हे भगवान! यदि बेटा बरी हो गया, हम केस जीत गये तो हम....।”

फिर उनमें से कोई कहेगा- “अरे भाई! सिद्धचक्र विधान में बड़ी सिद्धि है, हमारा बच्चा तो एकदम ठीक हो गया। ऑपरेशन में एक लाख रुपया लग गया तो क्या हुआ, पर भगवान की कृपा से वह बिलकुल ठीक है; अतः हमें विधान तो कराना ही है।”

दूसरा कहेगा - “हमने तो विधान में पैसा पानी की तरह बहाया, परन्तु क्या बतायें जब्त हुए माल का एक फुल्टा भी तो वापस नहीं मिला, उल्टा जुर्माना और भरना पड़ा। इसकारण अपनी तो भाई! अब पूजा-पाठ में कुछ श्रद्धा नहीं रही।”

तीसरा कहेगा – “भाई! विधान में पैसा तो हमने भी कम खर्च नहीं किया था, परन्तु हम तो यह समझते हैं कि जब अपना भाग्य खोटा हो तो बेचारे भगवान भी क्या कर सकते हैं? – जैसी करनी, वैसी भरनी। फिर भी भाई! हमारा तो भगवान की दया से जो भी हुआ अच्छा ही हुआ। विधान न करते तो केस तो फाँसी का ही था, फाँसी से बच भी जाते तो जन्मभर की जेल तो होती ही, परन्तु विधान का ही प्रताप है कि तीन साल की सजा से पल्ला छूट गया। धन्य है भाई! भगवान की महिमा....।”

इसप्रकार जो सिद्धचक्र विधान हमें सिद्धचक्र में सम्मिलित करा सकता है, आत्मा के अनादिकालीन मिथ्यात्व, अज्ञान एवं कषायभावों के कोढ़ को कम कर सकता है, मिटा सकता है; हमने अपनी मान्यता में उसकी महिमा को मात्र शारीरिक रोग मिटाने या अपनी अत्यन्त तुच्छ-लौकिक विषय-कषाय जनित कामनाओं की पूर्ति करने तक ही सीमित कर दिया है तथा वीतराग भगवान को पर के सुख-दुःख का कर्ता-हर्ता मानकर अपने अज्ञान व मिथ्यात्व का ही पोषण किया है।

और मजे की बात तो यह है कि – अपने इस अज्ञान के पोषण में प्रथमानुयोग की शैली में लिखी गई श्रीपाल-मैनासुन्दरी की पौराणिक कथा को निमित्त बनाया है। परमपवित्र उद्देश्य से लिखी गई उस धर्मकथा का प्रयोजन तो केवल अज्ञानी-मिथ्यादृष्टि अव्युत्पन्न जीवों की पाप प्रवृत्ति को छुड़ाकर मोक्षमार्ग में लगाने का था, जिसे हमने मिथ्यात्व की पोषक बना दिया है। इससे ज्ञात होता है कि अज्ञानी शास्त्र को शास्त्र कैसे बना लेते हैं?

क्या उपर्युक्त विचार मिथ्यात्व व अज्ञान के पोषक नहीं हैं और क्या सिद्धचक्र विधान की महिमा को कम नहीं करते? अरे! सिद्धों की आराधना का सच्चा फल तो वीतरागता की वृद्धि है; क्योंकि वे स्वयं वीतराग हैं। सिद्धों का सच्चा भक्त उनकी पूजा-भक्ति के माध्यम से किसी भी लौकिक लाभ की चाह नहीं रखता; क्योंकि लौकिक लाभ की चाह तीव्रकषाय के बिना सम्भव नहीं है और ज्ञानी भक्त को तीव्रकषाय रूप पाप भाव नहीं होता।

मैना सुन्दरी ने सिद्धचक्र विधान किया था, किन्तु पति का कोढ़ मिटाने के लिए नहीं किया था; बल्कि पति का दुःख देखकर उसे जो आकुलता होती थी, उससे बचने के लिए एवं पति का उपयोग जो बारम्बार पीड़ा चिन्तन रूप आर्तध्यानमय होता था, उससे बचाने के लिए सिद्धचक्र का पाठ किया था; क्योंकि मैना सुन्दरी तत्त्वज्ञानी तो थी ही और अगले भव में मोक्षगामी भी थी। कोटिभट राजा श्रीपाल भी तत्त्वज्ञानी व तद्भव मोक्षगामी महापुरुष थे। क्या वे यह नहीं जानते थे कि वीतरागी सिद्ध भगवान किसी का कुछ भला-बुरा नहीं करते? फिर भी अपनी आकुलता रूप पाप भाव से बचने के लिए एवं समता भाव बनाये रखने के लिए इससे बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है, अतः ज्ञानीजन भी यही सब करते हैं, पर कोई लौकिक सुख की कामना नहीं करते।

आगम में भी यही कहा है कि लौकिक अनुकूलताओं के लक्ष्य से वीतराग देव-गुरु-धर्म की आराधना से भी पापबन्ध ही होता है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं –

“पुनश्च, इस (इन्द्रियजनित सुख की प्राप्ति एवं शारीरिक दुःख के विनाश रूप) प्रयोजन के हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पापबन्ध ही होता है, इसलिए अपने को इस प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नहीं है।”^१

अतः हमें वीतराग देव-गुरु-धर्म (शास्त्र) का सही स्वरूप समझकर एवं उनकी भले प्रकार से पहचान व प्रतीति करके सभी पूजन-विधान के माध्यम से एक वीतराग भावों का ही पोषण करना चाहिए।

**लौकिक सुख सेवा के लिए है, भोगों के लिए नहीं;
दुख विवेक के लिए है, भयातुर होने के लिए नहीं।**

१. मोक्षमार्गप्रकाशक : प्रथम अध्याय, पृष्ठ ७

नवग्रह विधान : एक संभावना यह भी

जैनधर्म में एक वीतराग देव के सिवाय और कोई भी देव-देवी अष्टद्रव्य द्वारा पूज्य नहीं हैं। नवदेव और कोई नहीं, प्रकारान्तर से वीतराग देव के ही विविध रूप हैं। अरहंत व सिद्ध तो साक्षात् वीतराग हैं ही, आचार्य उपाध्याय व साधु भी वीतरागता के ही उपासक हैं तथा स्वयं भी एकदेश वीतरागी हैं। तथा जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा व जिनालय भी वीतराग के ही प्रतीक हैं। उक्तं च -

“अरहंत सिद्ध साहू त्तिदयं जिणधम्म वयण पडिमाहू ।।

जिणणिलया इदराए, णव देवा दिंतु मे बोहि ।।”

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर - ये नवदेव मुझे रत्नत्रय की पूर्णता देवें।

उपर्युक्त नवदेवों को एक जिनप्रतिमा में ही गर्भित बताते हुए रत्नकरण्ड श्रावकाचार में पं. सदासुखदासजी कहते हैं -

“सो जहाँ अरहंतनि का प्रतिबिम्ब है, तहाँ नवरूप गर्भित जानना; क्योंकि आचार्य, उपाध्याय व साधु तो अरहंत की पूर्व अवस्थायें हैं। अर सिद्ध पहले अरहंत होकर सिद्ध हुए हैं। अरहंत की वाणी सो जिनवचन है और वाणी द्वारा प्रकाशित हुआ अर्थ (वस्तु स्वरूप) सो जिनधर्म है। तथा अरहंत का स्वरूप (प्रतिबिम्ब) जहाँ तिष्ठै, सो जिनालय है। ऐसे नवदेवतारूप भगवान अरहंत के प्रतिबिम्ब का पूजन नित्य ही करना योग्य है।”^१

नवग्रह विधान के आद्योपान्त अध्ययन से ऐसा लगता है कि इसकी रचना उन परिस्थितियों में हुई होगी, जब जैनेतर लोग ज्योतिष विद्या में अधिक विश्वास रखते थे तथा ग्रहों की चाल से ही अपने भले-बुरे भविष्य का निर्णय करते थे एवं ग्रहों के निमित्त से होनेवाले अरिष्टों (अनिष्टों) के निवारणार्थ ज्योतिषियों के निर्देशानुसार ग्रहों की शान्ति के लिए देवी-देवताओं की आराधना एवं मन्त्रों-तन्त्रों की साधना किया करते थे।

१. पं. सदासुखदास : रत्नकरण्ड श्रावकाचार वचनिका, पृष्ठ २०८

जब देखा कि जैनेतरों की भाँति जैन भी जिनेन्द्रदेव की आराधना छोड़कर उन्हीं देवी-देवताओं की ओर आकर्षित होकर अपने वीतराग धर्म से विमुख होते जा रहे हैं तो कतिपय विचारकों ने धर्म वात्सल्य एवं करुण भाव से नवग्रह विधान की रचना करके यह मध्यम मार्ग निकाला होगा, जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा कि- ग्रह शान्ति के लिए अन्य देवी-देवताओं के द्वार खटखटाने की जरूरत नहीं है, जिनेन्द्र देव की आराधना से ही अनिष्ट का निवारण होगा। कहा भी है -

“अर्क चन्द्र कुज सौम्य गुरु, शुक्र शनिश्चर राहु ।

केतु ग्रहारिष्ट नाशनें, श्री जिनपूज रचाहु ।।”^२

-- -- --

“श्री जिनवर पूजा किये, ग्रह अनिष्ट मिट जाय ।

पंच ज्योतिषी देव सब, मिलि सेवें प्रभु पाय ।।”^३

यद्यपि सभी धर्मों में निष्काम भक्ति ही उत्कृष्ट मानी गई है, तथापि इसप्रकार की पूजा बनाने का मुख्य प्रयोजन यह था कि पूजक पहले देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर जिनपूजा करना आरम्भ करे, जिससे गृहीत मिथ्यात्व से बच सके। तदर्थ यह बताना जरूरी था कि जिस फल की प्राप्ति के लिए तुम देवी-देवताओं को पूजते हो, वही सब फल जिनपूजा से प्राप्त हो जायेगा; अन्यथा वे उस गलत मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में नहीं आते। जिनेन्द्र पूजा से लौकिक फलों की पूर्ति की बात सर्वथा असत्यार्थ भी तो नहीं है; क्योंकि मन्दकषाय होने से जो सहज पुण्यबंध होता है, उससे सभी प्रकार की लौकिक अनुकूलतायें भी प्राप्त तो हो ही जाती हैं? तथापि कामना के साथ की गई पूजा-भक्ति निष्काम भक्ति की तुलना में हीन तो है ही - इस ध्रुव सत्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

कुछ लोग तो ग्रहों की शान्ति हेतु ग्रहों की भी पूजा करने लगे थे, उनकी दृष्टि से उपर्युक्त दूसरे दोहे में बताया गया है कि नवग्रहों की पूजा करना योग्य

१. नवग्रह विधान : प्रथम समुच्चय पूजा की स्थापना का दोहा।

२. नवग्रह विधान : प्रथम पूजा की जयमाला का प्रथम दोहा।

नहीं है; क्योंकि नवग्रहों के रूप में जो ये ज्योतिषीदेव हैं, वे स्वयं भी सब मिलकर जिनेन्द्र के चरणों की सेवा करते हैं।

नवग्रह विधान में इन्हीं उपर्युक्त नवदेवताओं की पूजन की जाती है, नवग्रहों की नहीं। जहाँ तक नवग्रहों की शान्ति का सवाल है, सो वह तो अपने पुण्य-पाप के आधीन है, किन्तु इतना अवश्य है कि वीतराग देव की निष्कामभक्ति करने से सहज ही पापकर्म क्षीण होते हैं और पुण्यकर्म बँधता है, इससे बाह्य अनुकूलता भी सहज ही प्राप्त हो जाती है। इस संबंध में पण्डित टोडरमलजी का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है :-

“यहाँ कोई कहे कि - जिससे इन्द्रियजनित सुख उत्पन्न हो तथा दुःख का विनाश हो - ऐसे भी प्रयोजन की सिद्धि इनके द्वारा होती है या नहीं? उसका समाधान :- जो अरहंतादि के प्रति स्तवनादि रूप विशुद्ध परिणाम होते हैं, उनसे अघातिया कर्मों की साता आदि पुण्य प्रकृतियों का बन्ध होता है और यदि वे (भक्ति-स्तवनादि) के परिणाम तीव्र हों तो पूर्वकाल में जो असाता आदि पाप-प्रकृतियों का बन्ध हुआ था, उन्हें भी मन्द करता है अथवा नष्ट करके पुण्यप्रकृतिरूप परिणामित करता है और पुण्य का उदय होने पर स्वयमेव इन्द्रियसुख की कारणभूत सामग्री प्राप्त होती है। तथा पाप का उदय दूर होने पर स्वयमेव दुःख की कारणभूत सामग्री दूर हो जाती है। इसप्रकार इस प्रयोजन की भी सिद्धि उनके द्वारा होती है। अथवा जो जिनशासन के भक्त देवादिक हैं, वे उस पुरुष को अनेक इन्द्रिय सुख की कारणभूत सामग्रियों का संयोग कराते हैं और दुःख की कारणभूत सामग्रियों को दूर करते हैं - इसप्रकार भी इस प्रयोजन की सिद्धि उन अरहंतादिक द्वारा होती है, परन्तु इस प्रयोजन से कुछ भी अपना हित नहीं होता, क्योंकि यह आत्मा कषाय भावों से बाह्य सामग्रियों में इष्ट-अनिष्टपना मानकर स्वयं ही सुख-दुःख की कल्पना करता है। कषाय बिना बाह्य सामग्री कुछ सुख-दुःख की दाता नहीं है। इसलिए इन्द्रियजनित सुख की इच्छा करना और दुःख से डरना - यह भ्रम है।”^१

१. मोक्षमार्गप्रकाशक : पृष्ठ ६

आरती का अर्थ

‘पूजन’ शब्द की भाँति ही ‘आरती’ शब्द का अर्थ भी आज बहुत संकुचित हो गया है। आरती को आज एक क्रिया विशेष से जोड़ दिया गया है, जबकि आरती पंचपरमेष्ठी के गुणगान को कहते हैं। जिनदेव का गुणगान करना ही जिनेन्द्रदेव की वास्तविक आरती है।

पूजन साहित्य में ‘आरती’ शब्द जहाँ-जहाँ भी आया है, सभी जगह उसका अर्थ गुणगान करना ही है। इस संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण उद्धरण द्रष्टव्य हैं :-

देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।

भिन्न-भिन्न कहूँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥^१

देखिए! इस पद्य में देव-शास्त्र-गुरु को तीन रतन कहा गया है तथा इन तीनों रत्नों को क्रमशः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप तीनों रत्नों का कर्ता (निमित्त) कहा गया है। तथा ‘भिन्न-भिन्न कहूँ आरती’ कहकर तीनों का भिन्न-भिन्न गुणानुवाद करने का संकल्प किया गया है।

इसीप्रकार पंचमेरु पूजा, गुरु पूजा, दशलक्षणधर्म पूजा, क्षमावाणी पूजा, सिद्धचक्रमण्डल विधान आदि के निम्नांकित पदों से भी ‘आरती’ का अर्थ गुण-गान करना ही सिद्ध होता है।

पंचमेरु की ‘आरती’, पढ़ै सुनै जो कोय।

‘द्यानत’ फल जानै प्रभु, तुरत महासुख होय ॥^२

-- -- --

तीन घाटि नव कोड़ि सब, बन्दों शीश नवाय।

गुण तिन अट्टाईस लों, कहूँ ‘आरती’ गाय ॥^३

दशलक्षण बन्दौ सदा, मनवाँछित फलदाय।

कहाँ ‘आरती’ भारती, हम पर होहु सहाय ॥^४

१. देव-शास्त्र-गुरु पूजन : कविवर द्यानतराय, जयमाला।

२. पंचमेरु पूजन (जयमाला का अन्तिम छन्द) : कविवर द्यानतराय।

३. गुरु पूजन : कविवर द्यानतराय, जयमाला का प्रथम छन्द।

४. दशलक्षण धर्म पूजा : जयमाला का प्रथम छन्द।

स्तुति (स्तोत्र) साहित्य

जैनदर्शन में विशाल पूजन साहित्य है, परन्तु उतना प्राचीन नहीं; जितना प्राचीन स्तुति साहित्य है। आचार्य समन्तभद्र के स्तोत्र जैनदर्शन के आद्य भक्ति साहित्य में गिने जा सकते हैं।

वर्तमान में सम्पूर्ण स्तोत्र साहित्य में भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक प्रचलित स्तोत्र है। लाखों लोग इस स्तोत्र द्वारा प्रतिदिन परमात्मा की आराधना करते हैं। सहस्रों मातायें-बहिनें तो ऐसी भी हैं, जो इस स्तोत्र का पाठ किये या सुने बिना जल तक ग्रहण नहीं करती हैं।

यद्यपि जिनेन्द्र भक्ति का स्तोत्र साहित्य भी एक सशक्त माध्यम रहा है, किन्तु कालान्तर में उक्त स्तोत्र के साथ कुछ ऐसी कल्पित कथायें जुड़ गयी हैं, जिससे भ्रमित होकर भक्त लोगों ने इसको लौकिक कामनाओं की पूर्ति से जोड़ लिया है। स्व. पण्डित मिलापचन्द कटारिया ने अपने शोधपूर्ण लेख में लिखा है-

“इस सरल और वीतराग स्तोत्र को भी मन्त्र-तन्त्रादि और कथाओं के जाल से गूँथकर जटिल व सराग बना दिया है। इसके निर्माण के सम्बन्ध में भी मनगढ़न्त कथायें रच डाली हैं।”^१

मुनि श्री मानतुंगाचार्य द्वारा यह केवल भक्तिभाव से प्रेरित होकर निष्काम भावना से रचा गया भक्तिकाव्य है। इसमें कर्म बन्धन से मुक्त होकर संसारचक्र से छूटने के सिवाय कहीं कोई ऐसा संकेत भी नहीं है, जिसमें भक्त ने भगवान से कुछ लौकिक कामना की हो।

जहाँ भय व रोग निवारण की परोक्ष चर्चा आई है, वह कामना के रूप में नहीं है; बल्कि वहाँ तो यह कहा है कि परमात्मा की शरण में रहनेवालों को जब विषय-कषायरूप काम नागों का भी विष नहीं चढ़ता तो उसके सामने बेचारे सर्पादि जन्तुओं की क्या कथा? जब आत्मा का अनादिकालीन मिथ्यात्व का

१. जैन निबन्ध रत्नावली, पृष्ठ ३३७; वीरशासन संघ, कलकत्ता।

महारोग मिट जाता है तो तुच्छ जलोदरादि दैहिक रोगों की क्या बात करें?

ज्ञानी धर्मात्मा की भक्ति में लौकिक स्वार्थसिद्धि की गन्ध नहीं होती, कंचन-कामिनी की कामना नहीं होती, यश की अभिलाषा नहीं होती और भीरुता भी नहीं होती।

भय, आशा, स्नेह व लोभ से या लौकिक कार्यों की पूर्ति के लिए की गई भक्ति तो अप्रशस्तरूप राग होने से पापभाव ही है, उसका नाम भक्ति नहीं है।

जब अनेक संस्कृतियाँ मिलती हैं, तब उनका एक-दूसरे पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जैन पूजन साहित्य पर भी अन्य भारतीय भक्ति साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है, परन्तु जितने भी कर्तृत्वमूलक कथन हैं, उन सभी को अन्य दर्शनों की छाप कहना उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि जैनदर्शन में व्यवहारनय से उक्त सम्पूर्ण कथन संभव है, परन्तु उसकी मर्यादा औपचारिक ही है।

अतः जिनभक्तों का यह मूल कर्तव्य है कि वे जिनभक्ति के स्वरूप को पहिचानें, भक्ति साहित्य में समागत कथनों के वजन को जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में समझें। औपचारिक कथनों एवं वास्तविक कथनों के भेदों को अच्छी तरह पहिचानें; सभी को एक समान सत्य स्वीकार करना उचित नहीं है।

पूजन साहित्य मात्र पढ़ लेने या बोल लेने की वस्तु नहीं है, उसका अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

जैन पूजन और भक्ति साहित्य इतना विशाल है कि उस पर अनेक दृष्टियों से स्वतंत्र रूप से अनुशीलन अपेक्षित है। विविध दृष्टिकोण से उसे वर्गीकृत कर यदि उसकी मीमांसा और समीक्षा की जाये तो एक विशाल ग्रन्थ का निर्माण सहज ही हो सकता है। लगता है कि अभी विद्वानों का ध्यान इस ओर नहीं गया है। पूजन साहित्य पर समीक्षात्मक शोध-खोज की महती आवश्यकता है।

मैंने तो यह अल्प प्रयास किया है। यदि शोधी-खोजी विद्वानों का ध्यान इस ओर गया और साधारण पाठकों को इससे अल्प लाभ भी मिला तो मैं जिनेन्द्र शर्मन को सार्थक समझूँगा।

जिनपूजन के संदर्भ में श्री कानजी स्वामी के उद्गार

(श्रावकधर्मप्रकाश से संकलित)

● भगवान के विरह में उनकी प्रतिमा को साक्षात् भगवान के समान समझकर श्रावक हमेशा दर्शन-पूजन करे। धर्मी को सर्वज्ञ का स्वरूप अपने ज्ञान में भासित हो गया है, इसलिये जिनबिम्ब को देखते ही उसे उनका स्मरण हो जाता है।

● भगवान की प्रतिमा देखते ही अहो ! ऐसे भगवान !! इसप्रकार एकबार भी जिसने सर्वज्ञदेव के यथार्थ स्वरूप को लक्ष्यगत कर लिया, उसका भव से बेड़ा पार है। श्रावक प्रातः-काल भगवान के दर्शन के द्वारा अपने इष्ट ध्येय को स्मरण करके बाद में ही दूसरी प्रवृत्ति करे।

इसीप्रकार स्वयं भोजन करने के पूर्व मुनिवरों को याद करे कि - अहा! कोई सन्त-मुनिराज अथवा धर्मात्मा मेरे आँगन में पधारें और भक्तिपूर्वक उन्हें भोजन कराके पीछे मैं भोजन करूँ। श्रावक के हृदय में देव-गुरु की भक्ति का ऐसा प्रवाह बहना चाहिए।

● जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलाये - यह तेरा कैसा जैनपना है? जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्र के दर्शन-पूजन होते हैं, मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है; वह घर धन्य है और इसके बिना घर तो श्मशान-तुल्य है।

● जिसप्रकार प्रिय पुत्र-पुत्री को न देखे तो माता को चैन नहीं पड़ती अथवा माता को न देखे तो बालक को चैन नहीं पड़ती; उसीप्रकार भगवान के दर्शन के बिना धर्मात्मा को चैन नहीं पड़ती। “अरे रे, आज मुझे परमात्मा के दर्शन नहीं हुए, आज मैंने मेरे भगवान को नहीं देखा, मेरे प्रिय नाथ के दर्शन आज मुझे नहीं मिले।” - इसप्रकार धर्मी को भगवान के दर्शन बिना चैन नहीं पड़ती।

● श्रावक प्रथम तो हमेशा देवपूजा करे। देव अर्थात् सर्वज्ञदेव। श्रावक उन सर्वज्ञदेव का स्वरूप पहचान कर प्रीति एवं बहुमानपूर्वक रोज-रोज उनका दर्शन-पूजन करे। पहले ही सर्वज्ञ की पहचान की बात कही है। जिसने सर्वज्ञ को पहचान लिया है और स्वयं सर्वज्ञ होना चाहता है, उस धर्मी को निमित्तरूप में सर्वज्ञता को प्राप्त अरहंत भगवान के पूजन का उत्साह आता ही है। जिनमन्दिर बनवाना, उसमें जिनप्रतिमा स्थापित करवाना, उनकी पंचकल्याणक पूजा-अभिषेक आदि उत्सव करना, ऐसे कार्यों का उल्लास श्रावक को आता है - ऐसी उसकी भूमिका है, इसलिए उसे श्रावक का कर्तव्य कहा है। जो उसका निषेध करे तो मिथ्यात्व है और मात्र इतने शुभराग को ही धर्म समझ ले तो उसको भी सच्चा श्रावकपना नहीं होता - ऐसा जानो।

● जो निर्ग्रन्थ गुरुओं को नहीं मानता, उनकी पहचान और उपासना नहीं करता, उसको तो सूर्य उगे हुए भी अंधकार है। इसीप्रकार जो वीतरागी गुरुओं के द्वारा प्रकाशित सत् शास्त्रों का अभ्यास नहीं करता, उसके नेत्र होते हुए भी ज्ञानी उसको अंधा कहते हैं। विकथा पढ़ा करे और शास्त्र-स्वाध्याय न करे, उसके नेत्र किस काम के? श्रीगुरु के पास रहकर जो शास्त्र नहीं सुनता और हृदय में धारण नहीं करता, उस मनुष्य के कान तथा मन नहीं हैं - ऐसा कहा है।

४८ // जिनेन्द्र अर्चना



णमोकार-मंत्र

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

जिनेन्द्र-वन्दना

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(दोहा)

चौबीसों परिग्रह रहित, चौबीसों जिनराज ।
वीतराग सर्वज्ञ जिन, हितकर सर्व समाज ॥

(हरिगीतिका)

श्री आदिनाथ अनादि मिथ्या मोह का मर्दन किया ।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान का दर्शन किया ॥
निज आतमा को जानकर निज आतमा अपना लिया ।
निज आतमा में लीन हो निज आतमा को पा लिया ॥१॥
जिन अजित जीता क्रोध रिपु निज आतमा को जानकर ।
निज आतमा पहिचान कर निज आतमा का ध्यान धर ॥
उत्तम क्षमा की प्राप्ति की बस एक ही है साधना ।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना ॥२॥
सम्भव असम्भव मान मार्दव धर्ममय शुद्धात्मा ।
तुमने बताया जगत को सब आतमा परमात्मा ॥
छोटे-बड़े की भावना ही मान का आधार है ।
निज आतमा की साधना ही साधना का सार है ॥३॥

जिनेन्द्र अर्चना // ४९

दर्शन-दशक

(श्री साहिबरायजी कृत)

देखे श्री जिनराज, आज सब विघन नशाये ।
देखे श्री जिनराज, आज सब मंगल आये ॥
देखे श्री जिनराज, काज करना कुछ नाहीं ।
देखे श्री जिनराज, हौंस पूरी मन माहीं ॥
तुम देखे श्री जिनराज पद, भौजल अंजुलि जल भया ।
चिंतामणि पारस कल्पतरु, मोह सबनि सौं उठि गया ॥१॥
देखे श्री जिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर ।
देखे श्री जिनराज, काज सब होंय निरन्तर ॥
देखे श्री जिनराज, राज मनवांछित करिये ।
देखे श्री जिनराज, नाथ दुःख कबहुँ न भरिये ॥
तुम देखे श्री जिनराज पद, रोम-रोम सुख पाइये ।
धनि आज दिवस धनि, अब घरी, माथ नाथ कौं नाइये ॥२॥
धन्य-धन्य जिनधर्म, कर्म कौं छिन में तोरै ।
धन्य-धन्य जिनधर्म, परमपद सौं हित जोरै ॥
धन्य-धन्य जिनधर्म, भर्म को मूल मिटावै ।
धन्य-धन्य जिनधर्म, शर्म की राह बतावै ॥
जग धन्य-धन्य जिनधर्म यह, सो परकट तुमने किया ।
भवि खेत पापतप तपत कौं, मेघरूप ह्वै सुख दिया ॥३॥
तेज सूर-सम कहूँ, तपत दुःखदायक प्रानी ।
कांति चन्द-सम कहूँ, कलंकित मूरत मानी ॥
वारिधि-सम गुण कहूँ, खार में कौन भलप्पन ।
पारस-सम जस कहूँ, आप-सम करै न पर तन ॥
इन आदि पदारथ लोक में, तुम-समान क्यों दीजिये ।
तुम महाराज अनुपमादर्श, मोहि अनूपम कीजिये ॥४॥

तब विलम्ब नहिं किया, चीर द्रौपदी को बाढ्यौ ।
तब विलम्ब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यौ ॥
तब विलम्ब नहिं कियो, सीय^१ पावकतें टाख्यौ ।
तब विलम्ब नहिं कियो, नीर मातंग उबार्यौ ॥
इह विधि अनेक दुःख भगत के, चूर दूर किय सुख अवनि ।
प्रभु मोहि दुःख नासनि विषै, अब विलंब कारण क्वनि ॥५॥
कियो भौनतैं गौन, मिटी आरति संसारी ।
राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुःखकारी ॥
देखे श्री जिनराज, पाप मिथ्यात विलायो ।
पूजाश्रुति बहु भगति, करत सम्यक् गुण आयो ॥
इस मारवाड़ संसार में, कल्पवृक्ष तुम दरश है ।
प्रभु मोहि देहु भौ भौ विषै, यह वांछा मन सरस है ॥६॥
जय जय श्री जिनदेव, सेव तुमरी अघनाशक ।
जय जय श्री जिनदेव, भेव षट्द्रव्य-प्रकाशक ॥
जय जय श्री जिनदेव, एक जो प्रानी ध्यावै ।
जय जय श्री जिनदेव, टेव अहमेव मिटावै ॥
जय जय श्री जिनदेव प्रभु, हेत करम-रिपु दलन कौं ।
हूजै सहाय सँघ रायजी, हम तयार सिव-चलन कौं ॥७॥
जय जिनंद आनंदकंद, सुरवंद वंद्य पद ।
ज्ञानवान सब जान, सुगुन मनिखान आन पद ॥
दीनदयाल कृपाल भविक भौ-जाल निकालक ।
आप बूझ सब सूझ, गूझ नहिं बहुजन पालक ॥
प्रभु दीनबन्धु करुणामयी, जग उधरन तारन तरन ।
दुःख रास निकास स्वदास कौं, हमें एक तुम ही सरन ॥८॥

१. सीता

(रोला)

भक्ति रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन ।
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन ॥
स्वागत है जिनराज! तुम्हारा सिंहासन पर ।
हे जिनदेव पधारो श्रद्धा के आसन पर ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ ।

(थाली में जिनबिम्ब विराजमान करें)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया ।
दृग-सुख-वीरज ज्ञानस्वरूपी आतम पाया ॥
मंगल कलश विराजित करता हूँ जिनराजा ।
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरे काजा ॥

ॐ ह्रीं अर्ह कलशस्थापनं करोमि ।

(चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें)

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया ।
अष्ट अंग युत मानो सम्यग्दर्शन पाया ॥
श्री जिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित ।
करूँ आज रागादि विकारी भाव विसर्जित ॥

ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(पीठ स्थित जिनप्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें)

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर ।
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर ॥
कैसे हो प्रक्षाल, जगत के अघ-क्षालक का ।
क्या दरिद्र होगा पालक? त्रिभुवन पालक का ॥
भक्ति भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता ।
है किसका अभिषेक भ्रान्त चित खाता गोता ॥
नाथ! भक्तिवश जिन बिम्बों का करूँ नहवन मैं ।
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पर्शन मैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशतितीर्थकर-
परमदेवमाद्यानामाद्यो जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.....नाम्निनगरे मासानामुत्तमे
.....मासे.....पक्षे.....दिने मुन्यार्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थपवित्रतर-
जलेन जिनमभिषेचयामि ।

(चारों कलशों से अभिषेक करें तथा वादित्र नाद करायें एवं जय-जय शब्दोच्चारण करें)

७० //जिनेन्द्र अर्चना

(दोहा)

क्षीरोदधि-सम नीर से, करूँ बिम्ब प्रक्षाल ।
श्री जिनवर की भक्ति से, जानूँ निज पर चाल ॥
तीर्थकर का न्हन शुभ, सुरपति करें महान ।
पंचमेरु भी हो गये, महातीर्थ सुखदान ॥
करता हूँ शुभ भाव से, प्रतिमा का अभिषेक ।
बचूँ शुभाशुभ भाव से, यही कामना एक ॥
जल-फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज ।
हुआ बिम्ब अभिषेक अब, पाऊँ निज पदराज ॥
ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
श्री जिनवर का धवल यश, त्रिभुवन में है व्याप्त ।
शान्ति करें मम चित्त में, हे परमेश्वर आप ॥

(पुष्पाञ्जलि क्षेपण करें)

(रोला)

जिन प्रतिमा पर अमृतसम जल-कण अति शोभित ।
आत्म-गगन में गुण अनन्त तारे भवि मोहित ॥
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन ।
शुद्ध वस्त्र से जल-कण का करता परिमार्जन ॥

(प्रतिमा को शुद्ध वस्त्र से पोंछें)

(दोहा)

श्री जिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार ।
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्य कुमार ॥
(जिनप्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें तथा निम्न छन्द बोलकर अर्घ्य चढ़ायें ।)

जल-गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज ।
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज ॥

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

जिन संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुण खान ।
मस्तक पर धारूँ सदा, बनुँ स्वयं भगवान ॥

(मस्तक पर गन्धोदक चढ़ायें । अन्य किसी अंग से गन्धोदक का स्पर्श वर्जित है ।)

* * *

जिनेन्द्र अर्चना // ७१

(पद्मरि छंद)

चउ कर्मसु त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि ।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छ्यालिस गुणगंभीर ॥२॥
शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार ।
देवाधिदेव अरहन्त देव, वन्दौ मन-वच-तन कर सुसेव ॥३॥
जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निर-अक्षरमय महिमा अनूप ।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत ॥४॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग ।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥५॥
गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रत्नत्रय निधि अगाध ।
संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपै शिव-पद निहार ॥६॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस ।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मन-वचन-काय ॥७॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा)

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै ।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै ॥८॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भजन

अब प्रभु चरण छोड़ कित जाऊँ ।
ऐसी निर्मल बुद्धि प्रभु दो, शुद्धातम को ध्याऊँ ॥टेक॥
सुर नर पशु नारक दुख भोगे, कबतक तुम्हें सुनाऊँ ।
बैरी मोह महा दुख देवे, कैसे याहि भगाऊँ ॥अब॥
सम्यग्दर्शन की निधि दे दो, तो भवभ्रमण मिटाऊँ ।
सिद्ध स्वपद को प्राप्त करूँ मैं, परम शान्त रस पाऊँ ॥अब॥
भेदज्ञान का वैभव पाऊँ, निज के ही गुण गाऊँ ।
तुम प्रसाद से वीतराग प्रभु, भवसागर तर जाऊँ ॥अब॥

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत)

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर ।
उस श्री जिन-वाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन ॥
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण ।
उन देव परम-आगम गुरु को, शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।
इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया ।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अबतक जान नहीं पाया ॥
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है ।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है ॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है ।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।
उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किञ्चित् भी ।
फिर भी अनुकूल लगे, उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही ॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया ।
निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं ।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं ॥
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है ।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर-कालुष धोती है ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूँ आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा ।
आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है ।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़-चेतन-सर्जन करता है ॥
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेद-ज्ञान पा हरषाया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा ।
मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं ।
मैं हूँ अखण्ड चित्पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ॥
यह धूप नहीं, जड़-कर्मों की रज आज उड़ाने मैं आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा ।
शुभ-कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा ।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उनमें समा रहा ॥
रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध-शरण में मैं आया ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा ।
जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की ।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की ॥
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मों का सब फल पाया ।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया ॥
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुम को लख यह सद्ज्ञान हुआ ॥
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्मप्रकाश ।
आनन्दामृत पानकर, मिटे सभी की प्यास ॥

(पद्वरि)

जय ज्ञान मात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप ।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड ॥
रागादि विकारी भाव जा, तुम हुए निरामय निर्विकार ।
निर्द्वन्द्व निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार ॥
नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास ।
प्रभु शिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार ॥
प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार ।
निज परिणति का सत्यार्थभान, शिवपद दाता जो तत्त्वज्ञान ॥
पाया नहीं मैं उसको पिछान, उलटा ही मैंने लिया मान ।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान ॥
शुभ-अशुभ राग जो दुःखखान, उसमें माना आनन्द महान ।
प्रभु अशुभ-कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय ॥
जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको जाना मैं दुःख स्वरूप ।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग ॥
इच्छा-निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह ।
आकुलतामय संसार-सुख, जो निश्चय से है महा-दुःख ॥
उसकी ही निश-दिन करी आश, कैसे कटता संसार-पाश ।
भव-दुःख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान ॥
मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहीं दिया ध्यान ।
पूजा कीनी वरदान माँग, कैसे मिटता संसार स्वाँग ॥
तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज ।
मो उर प्रकट्यो प्रभु भेद-ज्ञान, मैंने तुम को लीना पिछान ॥

चैतन्य-सुरभि की पुष्पवाटिका, में विहार नित करते हो ।
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो ॥
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से ।
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु मधुशाला^१ से ।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम्.....

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई ।
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत्-तृष्णा अविरल पीन^२ हुई ॥
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये ।
सत्वर^३ तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो, हम आनंद-भवन पहुँचे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्.....

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय ।
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव ॥
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ ।
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ^४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्.....

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी^५ धूपों से ।
अतएव निकट नहीं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे ॥
यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण^६ विशुद्ध हुआ ।
छक गया योग-निद्रा^७ में प्रभु! सर्वांग अमी^८ है बरस रहा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपम्.....

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में ।
प्रति पल बरसात गगन^९ से हो, रसपान करो शिव-गगरी में ॥
ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण ।
प्रभु! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलम्.....

तेरे विकीर्ण^{१०} गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए ।
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूति अनुभूति लिये ॥

१. अनुभूति २. सुन्दर रचना ३. शरीर ४. तूफान ५. ज्ञप्ति परिवर्तन ६. आत्मप्रदेशों का कम्पन

७. आठ गुण ८. रात ९. उत्कृष्ट भक्ति परिणाम १०. निज शुद्धात्म-संवेदन ।

हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती ।
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश ।

शोध-प्रबंध चिदात्म के,^१ स्रष्टा तुम ही एक ॥

जगाया तुमने कितनी बार! हुआ नहीं चिर-निद्रा का अन्त ।
मदिर^२ सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त ॥
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान ।
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान ॥
ज्ञान की प्रति पल उठे तरंग, झँकता उसमें आतमराम ।
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम ॥
किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी^३ गहल अनन्त ।
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसंत ॥
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति ।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति ॥
अतः जड़-कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश ।
और फिर नरक-निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश ॥
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश ।
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच ॥
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव!
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहे हम कैसे उसको देव!
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान ।
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान ॥
“अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव ।
शुभाशुभ की जड़ता को दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय ॥

१. आत्मा के शुद्धि-विधान की शोध २. मादक ३. तोता और बंदर जैसी ४. बिजली ५. मृत्यु

अहो 'चित्' परम अकर्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष ।
 अपरिमित अक्षय वैभव-कोष", सभी ज्ञानी का यह परिवेश" ॥
 बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
 विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ ॥
 किया तुमने जीवन का शिल्प", खिरे सब मोहकर्म और गात" ।
 तुम्हारा पौरुष झंझावात", झड़ गये पीले-पीले पात ॥
 नहीं प्रज्ञा-आवर्तन" शेष, हुए सब आवागमन अशेष ।
 अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक ॥
 तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक ।
 अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग ॥
 योग-चांचल्य" हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप ।
 अरे! ओ योगरहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत ॥
 जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखंड ।
 तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध ॥
 अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल" पुनीत ।
 अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवलमहल के बीच ॥
 उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ!
 अरे! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात ॥
 प्रभो! बीती विभावरी" आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव ।
 झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर-निमन भगवंत ।

द्रव्य"-भाव" स्तुति से प्रभो!, वंदन तुम्हें अनंत ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

१. शुद्ध अन्तस्तत्त्व का आनंदभवन २. पुष्ट ३. अविलम्ब ४. महोत्सव ५. दशधर्मों
 ६. अंतरंग प्रदूषण ७. आनन्द-समाधि ८. अमृत ९. शून्य चैतन्य १०. बिखरे हुए

विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थकर पूजन

(पं. दानतरायजी कृत)

(दोहा)

द्वीप अढ़ाई मेरु पन, अरु तीर्थकर बीस ।

तिन सबकी पूजा करूँ, मन-वच-तन धरि सीस ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकराः! अत्र अवतरत अवतरत, संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठःठः ।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकराः । अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् ।

इन्द्र-फणीन्द्र-नरेन्द्र-वद्य पद निर्मल धारी ।

शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी ॥

क्षीरोदधि-सम नीर सों (हो) पूजों तृषा निवार ।

सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार ॥

श्री जिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-

अनन्तवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-

नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येति विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो जन्म-

जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

तीन लोक के जीव पाप-आताप सताये ।

तिनकों साता दाता शीतल वचन सुहाये ॥

बावन चंदन सों जजूं (हो) भ्रमन-तपत निरवार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा ।

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी ।

तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी ॥

तंदुल अमल सुगंध सों (हों) पूजों तुम गुणसार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा ।

भविक-सरोज-विकाश निंद्य-तम हर रवि-से हो ।

जति-श्रावक आचार कथन को तुमही बड़े हो ॥

फूल सुवास अनेक सों (हो) पूजों मदन-प्रहार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा ।

काम-नाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो ।

छुधा महा दव-ज्वाल तास को मेघ लहे हो ॥

श्री वर्तमान चौबीसी पूजन

(कविवर वृन्दावनदास कृत)

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय ।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय ॥
विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शांति कुंशु अर मल्लि मनाय ।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः ।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा ।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही ।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा ।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी ।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी ॥चौबीसों ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल सित सोम-समान सुन्दर अनियारे ।
मुक्ता फल की उनमान पुञ्ज धरों प्यारे ॥चौबीसों ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे ।
जिन-अग्र धरों गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे ॥चौबीसों ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

मन-मोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने ।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने ॥चौबीसों ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१२० // जिनेन्द्र अर्चना

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै ।

सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान-कला जागै ॥

चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही ।

पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु! खेवत हों ।

मिस-धूम करम जर जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥चौबीसों ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो ।

देखत दृग-मनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥चौबीसों ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों ।

तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥चौबीसों ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाथ हित हेत ।

गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥

(त्रिभंगी)

जय भव-तम भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मनि, स्वच्छ करा ।

शिव-मग-परकाशक, अरिगण-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा ॥

(पद्वरि)

जय ऋषभदेव रिषि-गन नमन्त, जय अजित जीत वसु-अरि तुरन्त ।

जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द-पूर ॥

जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्म द्युति तनरसाल ।

जय जय सुपार्श्व भव-पास नाश, जय चन्द, चन्द-तनद्युति प्रकाश ॥

जय पुष्पदन्त द्युति-दन्त-सेत, जय शीतल शीतल-गुननिकेत ।

जय श्रेयनाथ नुत-सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपुज्ज ॥

जिनेन्द्र अर्चना // १२१

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यक् दरशन-रतन गहीजे, जिन-वच में सन्देह न कीजै ।
इह- भव-विभव-चाहदुःखदानी, पर- भव भोग चाहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये ।
पर-दोष ढकिये धरम डिगते को, सुथिर कर हरखिये ॥
चहुँ संघ को वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना ।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहाँ फेर न आवना ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनाय जयमालापूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा ।

सम्यग्ज्ञान पूजन

(दोहा)

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन भान ।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यग्ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट्, इति आह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठःठः, इति स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो, भव-भव वषट्, इति सन्निधिकरणम् ।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

१३६ // जिनेन्द्र अर्चना

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप-जोति तम-हार, घट पट परकाशै महा ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धूप घान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल-फूल चरु ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

आप आप जानैं नियत, ग्रन्थ-पठन व्यवहार ।

संशय-विभ्रम-मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार ॥

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यग्ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया ।

अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अरथ उभय संग जानो ॥

जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइए ।

तप रीति गहि बहु मौन देकैं, विनय-गुन चित लाइए ॥

ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना ।

इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पट पेखना ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनेन्द्र अर्चना // १३७

सम्यक्चारित्र पूजन

(दोहा)

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार ।

तीर्थकर जाको धरै, सम्यक्चारित सार ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट्, इति आह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठःठः, इति स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्, इति सन्निधिकरणम् ।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।

सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै ।

सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै ।

सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षयपद प्राप्ताये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै ।

सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै ।

सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप-जोति तम-हार, घट-पट परकाशै महा ।

सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

१३८ // जिनेन्द्र अर्चना

धूप घान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै ।

सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर शिवफल करै ।

सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु ।

सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

आप आप थिर नियत नय, तप संयम व्यवहार ।

स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुःखहार ॥

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यक्चारित्र-रतन सँभालौ, पाँच पाप तजि के व्रत पालौ ।

पंच समिति त्रय गुप्ति गहीजै, नर-भव सफल करहु तन छीजै ॥

छीजै सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिए ।

बहु रुल्यो नरक-निगोदमाहीं, विषय-कषायनि टालिए ॥

शुभ-करम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात है ।

‘घानत’ धरम की नाव बैठो, शिव-पुरी कुशलात है ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुक्ति न होय ।

अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलै दव लोय ॥

जिनेन्द्र अर्चना // १३९

स्वाहा ।

सदनेवज बहुविधि पकवान, पूजौं श्रीजिनवर गुणखान ।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थकर पद-पाय ।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार, पूजौं श्रीजिन केवलधार ।

परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर कपूरगन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय ।

परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित-दातार ।

परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय ।

परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो नर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास ।

पाप-पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश ॥

(चौपाई)

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई ।

विनय महाधरै जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी ॥

शील सदा दृढ़ जो नर पालै, सो औरन की आपद टालै ।

ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं ॥

जो संवेग-भाव विसतारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै ।
दान देय मन हरष विशेषै, इह भव जस पर भव सुख देखै ॥
जो तप तपै खपै अभिलाषा, चुरै करम-शिखर गुरु भाषा ।
साधुसमाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै ॥
निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया ।
जो अरहंत भगति मन आनै, सो जन विषय-कषाय न जानै ॥
जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरै है ।
बहुश्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द-दाता ।
षट् आवश्यक काल जो साधै, सो ही रत्नत्रय आराधै ॥
धरम-प्रभाव करै जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी ।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थकर पदवी पावै ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय ।

देव-इन्द्र-नर-वंद्य-पद, 'द्यानत' शिव-पद होय ॥

(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

मैंने तेरे ही भरोसे

मैंने तेरे ही भरोसे महावीर, भँवर में नैया डार दई ॥टेक ॥

जनम-जनम का मैं दुखियारा, भव-भव में दुख पाया ।

सारी दुनियाँ से निराश हो, शरण तुम्हारी आया ॥मैंने. ॥१ ॥

चारों गतियों में भरमाया, कष्ट अनन्तों भोगे ।

आज मुझे विश्वास हो गया, मेरी भी सुधि लगे ॥मैंने. ॥२ ॥

नाम तुम्हारा सुनकर आया, मेरे संकट हर लो ।

आत्मज्ञान का दीपक दे दो, मुझको निज-सम कर लो ॥मैंने. ॥३ ॥

बड़े भाग्य से तुमको पाया, अब न कहीं जाऊँगा ।

मुझे मोक्ष पहुँचा दो स्वामी, फिर न कभी आऊँगा ॥मैंने. ॥४ ॥

पंचमेरु-पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(गीता छन्द)

तीर्थकरों के न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्मदा,

तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंचमेरुन की सदा ।

दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजही,

पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुःख भाजही ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर
अवतर संवौषट्, इति आह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ
ठःठः इति स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो
भव-भव वषट् इति सन्निधिकरणम् ।

(चौपाई आंचलीबद्ध)

सीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्री जिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दिर-विद्युन्मालीपंचमेरुसंबंधि-अशीति
जिनचैत्या-लयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो भवातापविनाशनाय
चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं जिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति-जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

१४४ // जिनन्द्र अर्चना

बरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्री जिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

मन-बांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्री जिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति-जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय
नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तम हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसौं पूजौं श्री जिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय
दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्री जिनराय

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय
धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरस सुवर्ण सुगन्ध सुभाय, फलसौं पूजौं श्री जिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति-जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं
निर्वपामीति स्वाहा ।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्री जिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मन्दर कहा ।

विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जग में प्रकट ॥

जिनन्द्र अर्चना // १४५

(बेसरी छन्द)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भू पर छाजै ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
ऊपर पांच-शतक पर सोहै, नन्दन-वन देखत मन मोहै ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
ऊँचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन-सोहै गिरि-सीसं ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
चारों मेरु समान बखाने, भू पर भद्रशाल चहुँ जाने ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
ऊँचे पाँच शतक पर भाखै, चारों नन्दनवन अभिलाखै ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पाण्डुक चारों वन शुभ गाये ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
सुर-नर-चारन वन्दन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं ।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जयमालामहार्घ्य
निर्वपामिति स्वाहा ।

(दोहा)

पंचमेरु की आरती, पढ़े सुनै जो कोय ।
'द्यानत' फल जानै प्रभो, तुरत महासुख होय ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

१४६ // जिनेन्द्र अर्चना

नन्दीश्वर द्वीप-पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(अडिल्ल)

सरब परव में बड़ो अठाई परव है ।
नन्दीश्वर सुर जांहिं लेय वसु दरव है ॥
हमें सकति सो नाहिं इहाँ करि थापना ।
पूजै जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणादिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-
जिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणादिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-
जिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणादिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-
जिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् ।

(अवतार)

कंचन-मणि-मयभृंगार, तीरथ-नीर भरा ।
तिहुँ धार दयी निरवार, जामन मरन जरा ॥
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों ।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणादिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-
जिनप्रतिमाभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाथ जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं ।
प्रभु यह गुन कीजै साँच, आयो तुम ठाहीं ॥ नन्दी ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः संसारतापविनाशनाथ
चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरै सोहै ।
सब जीते अक्ष-समाज तुम-सम अरु को है ॥ नन्दी ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्
निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनेन्द्र अर्चना // १४७

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं ।
लहुँ शील-लच्छमी एव, छूटों सूलनसौं ॥
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों ।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा ।
चरु तुम ढिंग सोहैं सार, अचरज है पूरा ॥नन्दी ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक की ज्योति-प्रकाश, तुम तन माहिं लसै ।
टूटै करमन की राशि, ज्ञान-कणी दरसै ॥नन्दी ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार- विनाशनाय
दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश-दिशि नारि वरै ।
अति हरष-भाव परकाश, मानो नृत्य करै ॥नन्दी ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं
निर्वपामीति स्वाहा ।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत हैं ।
तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं ॥ नन्दी ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं
निर्वपामीति स्वाहा ।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों ।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों ॥ नन्दी ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

१४८ // जिनेन्द्र अर्चना

जयमाला

(दोहा)

कार्तिक फाल्गुन साढ़ के, अन्त आठ दिन माहिं ।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं ॥

(लक्ष्मीधरा)

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा ।
लाख चौरासिया एक दिश में लहा ॥
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं ।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥
चार दिशि चार अंजनगिरी राजहीं ।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं ॥
ढोल-सम गोल ऊपर तले सुन्दरं ॥भौन ॥
एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी ।
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी ॥
चहुँ दिशि चार वन लाख जोजन वरं ॥भौन ॥
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं ।
सहस दश महाजोजन लखत ही सुखं ॥
बावरी कौन दो माहिं दो रतिकरं ॥भौन ॥
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे ।
चार सोलह मिलैं सर्व बावन लहे ॥
एक इक सीस पर एक जिन मन्दिरं ॥भौन ॥
बिम्ब अठ एक सौ रतनमयी सोहही ।
देव-देवी सरव नयन मन मोहही ॥
पाँच सौ धनुष तन पद्म-आसन परं ॥भौन ॥
लाल नख-मुख नयन श्याम अरु स्वेत हैं ।
श्याम-रंग भोंह सिर-केश छबि देत हैं ॥
वयन बोलत मनो हँसत कालुष हरं ॥भौन ॥

जिनेन्द्र अर्चना // १४९

जगमग-जगमग होत दशों दिश, ज्योति रही मन्दिर में छाय ।
श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय ॥
श्री आदिनाथ के चरणकमल पर, बलि-बलि जाऊँ मनवचकाय ।
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर कपूर सुगन्ध मनोहर, चन्दन कूट सुगन्ध मिलाय ।
श्रीजी के सन्मुख खेय धुपायन, कर्म जरे चहुँगति मिटि जाय ॥श्री॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय ।
महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पांय ॥श्री॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
शुचि निरमल नीरं गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरू ले मन हरषाय ।
दीप धूप फल अर्घ्य सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय ॥श्री॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

(दोहा)

सर्वारथसिद्धि तैं चये, मरुदेवी उर आय ।
दोज असित आषाढ़ की, जजूँ तिहारे पांय ॥

ॐ ह्रीं श्री आषाढकृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्तये श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान ।
सुरपति उत्सव अति कस्या मैं पूजौँ धर ध्यान ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्तये श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

तृणवत् ऋद्धि सब छाँडि के, तप धार्यो वन जाय ।
नौमी चैत्र असेत की, जजूँ तिहारे पांय ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपकल्याणकप्राप्तये श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

फागुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान ।
इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजौँ इह थान ॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्तये श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

माघ चतुर्दशि कृष्ण की, मोक्ष गये भगवान ।
भवि जीवों को बोधि के, पहुँचे शिवपुर थान ॥

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्तये श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

आदीश्वर महाराज, मैं! विनती तुमसे करूँ ।
चारों गति के माहिं मैं दुख पायो सो सुनो ॥
कर्म अष्ट मैं हूँ एकलो, यह दुष्ट महादुख देत हो ।
कबहूँ इतर निगोद में मोकूँ, पटकत करत अचेत हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥टेक ॥

प्रभु कबहुँक पटक्यो नरक में, जठै जीव महादुख पाय हो ।
नित उठि निरदई नारकी, जठै करत परस्पर घात हो ॥म्हारी ॥
प्रभु नरक तणा दुःख अब कहूँ, जठै करें परस्पर घात हो ।
कोइयक बाँध्यो खंभसों, पापी दे मुदगर की मार हो ॥म्हारी ॥
कोइयक काटें करोतसों, पापी अंगतणी दोग फाड़ हो ।
प्रभु यह विधि दुःख भुगत्या घणा, फिर गति पाई तिरयंच हो ॥म्हारी ॥
हिरणा बकरा बाछला, पशु दीन गरीब अनाथ हो ।
प्रभु मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, जापै लदियो भार अपार हो ॥म्हारी ॥
नहिं चाल्यो जठै गिर पर्यो, पापी दे सोटन की मार हो ।
प्रभु कोइयक पुण्य संजोगसूँ, मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो ॥म्हारी ॥

देवांगना संग रमि रह्यो, जठै भोगनि को परिताप हो ।
 प्रभु संग अप्सरा रमि रह्यो, कर-कर अति अनुराग हो ॥म्हारी. ॥
 कबहुँक नंदनवन विषैँ प्रभु, कबहुँक वन गृह माहिँ हो ।
 प्रभु यह विधिकाल गमायकैँ, फिर माला गई मुरझाय हो ॥म्हारी. ॥
 देव थिती सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो ।
 सोच करत तन खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ मैँ जाय हो ॥म्हारी. ॥
 प्रभु गर्भतणा दुःख अब कहूँ, जठै सकड़ाई की ठौर हो ।
 हलन-चलन नहिँ कर सक्यो, जठै सघन कीच घनघोर हो ॥म्हारी. ॥
 माता खावै चरपरो, फिर लागै तन संताप हो ।
 प्रभु ज्यों जननी तातो भखै, फिर उपजै तन संताप हो ॥म्हारी. ॥
 औंधे मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हो ।
 कठिन-कठिनकर नीस्रयो, जैसे निसरै जंत्री में तार हो ॥म्हारी. ॥
 प्रभु फिर निकसत ही धरत्याँ पड्यो, फिर लागी भूख अपार हो ।
 रोय रोय बिलख्यो घणो, दुख वेदन को नहिँ पार हो ॥म्हारी. ॥
 प्रभु दुख मेटन समरथ धनी, यातैँ लागूँ तिहारे पांय हो ।
 सेवक अरज करै प्रभू मोकूँ, भवदधि पार उतार हो ॥म्हारी. ॥

(दोहा)

श्रीजी की महिमा अगम है, कोई न पावै पार ।

मैं मति अल्प अज्ञान हों, कौन करै विस्तार ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मनलाय ।

सुरगों में संशय नहीं, निहचै शिवपुर जाय ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन

(कविवर वृन्दावनदासजी कृत)

(छप्पय)

चारुचरन आचरन, चरन चितहरनचिह्नचर,
 चन्दचन्दतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर ।
 चतुक चण्ड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर,
 चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्र धनुरधर ॥
 चर-अचर हितू तारनतरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि ।
 जिनचंदचरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रचि रुचि ॥

(दोहा)

धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृपनन्द ।

मातु लछमना उर जये, थापों चन्दजिनन्द ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आट्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम् ।

(अवतार)

गंगाहद निरमल नीर, हाटक भृंगभरा,

तुम चरन जजो वर वीर, मेटो जनम-जरा ।

श्रीचंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगे,

मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै ।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री खण्ड कपूर सुचंग, केशर रंगभरी ।

घसि प्रासुक जल के संग, भव-आताप हरी ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल सित सोमसमान, सम ले अनियारे ।

दिये पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनेन्द्र अर्चना ///१५५

१५४ ///जिनेन्द्र अर्चना

सुरद्रुम के सुमन सुरंग, गन्धित अलि आवै ।

तासों पद पूजत चंग, कामव्यथा जावै ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नैवज नाना परकार, इन्द्रिय बलकारी ।

सो लै पद पूजों सार, आकुलताहारी ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तम भंजन दीप सँवार, तुम ढिग धारतु हों ।

मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दशगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हों ।

मम करम दुष्ट जरि जाहिं, यातैं सेवतु हों ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अति उत्तम फल सुमँगाय, तुम गुन गावतु हों ।

पूजों तन-मन हरषाय, विघन नशावतु हों ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों ।

पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भली ।

हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा ।

कलि पौष इकादशि जन्म लयो, तब लोकविषै सुख थोक भयो ।

सुर-ईश जजें गिरशीश तबै, हम पूजत हैं नुतशीश अबै ॥

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा ।

१५६ // जिनेन्द्र अर्चना

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा ।

निज ध्यान विषै, लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर केवलभानु उद्योत कियो, तिहुँ लोक तणों भ्रम मेट दियो ।

कलि फाल्गुन सप्तमी इन्द्र जजें, हम पूजहिं सर्व कलंक भजें ॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सित फाल्गुन सप्तमी मुक्त गये, गुणवन्त अनन्त अबाध भये ।

हरि आय जजें तित मोद धरें, हम पूजत ही सब पाप हरें ॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

हे मृगांक-अंकित चरण, तुम गुण अगम अपार ।

गणधर से नहीं पार लहि, तौ को वरनत सार ॥

पै तुम भगति हिये मम, प्रेरें अति उमगाय ।

तातैं गाऊँ सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय ॥

(पद्धरि छन्द)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान, भवकानन हानन दव प्रमान ।

जय गरभ जनम मंगल दिनन्द, भवि जीवविकाशन शर्मकन्द ॥

दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवांछित सुख भोगे जिनाय ।

लखि कारण है जगतैं उदास, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥

तित लौकांतिक बोध्यो नियोग, हरि शिविका सजि धरियो अभोग ।

तापै तुम चढ़ि जिन चन्द्रराय, ता छिनकी शोभा को कहाय ॥

जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गलगुलकहार ।

सित रतन जड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्रचरण चरचैं पवित्र ॥

जिनेन्द्र अर्चना // १५७

श्री शान्तिनाथ जिनपूजन

(कविवर वृन्दावनदासजी कृत)

(छन्द मत्तगयन्द)

या भवकानन में चतुरानन, पापपनानन घेरी हमेरी ।
आतम जानन मानन ठानन, बान न होन दई शठ मेरी ॥
तामद भानन आपहि हो, यह छानन आन न आनन टेरी ।
आन गही शरनागत को अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् इति सन्निधिकरणम् ।

(छन्द त्रिभंगी)

हिमगिरिगतगंगा, धार अभंगा प्रासुक संग्गा भरि भृंगा ।
जरमदनमृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा ॥
श्री शान्तिजिनेशं, नुतशक्रे शं, वृषचक्रे शं चक्रे शं ।
हनि अरिचक्रे शं हे गुनधेशं दयामृते शं मक्रे शं ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर बावन चंदन, कदली नंदन, घन आनंदन सहित घसों ।
भवतापनिकंदन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन वसों ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

हिमकर करे लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जत भरि थारी ।
दुखदारिद गज्जत, सदपदसज्जत, भवभयभज्जत अतिभारी ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं मलयभरं ।
भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीर धरं ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१६० /// जिनेन्द्र अर्चना

पकवान नवीने पावन कीने, षट्स भीने सुखदाई ।
मनमोदन हारे, क्षुधा विदारे, आगैं धारे गुन गाई ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रमतमनाशे, ज्ञेयविकाशे सुखरासे ।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह निवारा, निज भासे ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

चन्दन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूरं, माहिं जुरं ।
तसु धूम उड़ावै, नाचत जावै, अलि गुंजावै, मधुर स्वरं ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बादाम खजूरं, दाडिम पूरं, निम्बुक भूरं लै आयो ।
तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निजरसरज्जो उमगायो ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी ।
तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

(छन्द सुन्दरी तथा द्रुतविलम्बित)

असित सातैं भादव जानिये, गरभमंगल तादिन मानिये ।
शचि कियो जननी पद चर्चनं, हम करैं इत ये पद अर्चनं ॥

ॐ ह्रीं श्री भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनम जेठ चतुर्दशी श्याम हैं, सकल इन्द्रसु आगत धाम हैं ।
गजपुरै गज साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हौं अबै ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनेन्द्र अर्चना /// १६१

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं।
 भ्रमर चौदस जेठ सुहावनी, धरमहेत जजों गुन पावनी ॥
 ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं
 निर्वपामीति स्वाहा ।

शुक्ल पौष दशैं सुखरास है, परम केवलज्ञान प्रकाश है।
 भवसमुद्र-उधारन देव की, हम करैं नित मंगल सेवकी ॥
 ॐ ह्रीं श्री पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं
 निर्वपामीति स्वाहा ।

असित चौदशि जेठ हनें अरी, गिरीसमेदथकी शिवतिय वरी।
 सकल इन्द्र जजैं तित आयकैं, हम जजैं इत मस्तक नायकैं ॥
 ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं
 निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(छन्द-रथोद्धता, चंद्रवत्स तथा चंद्रवर्त्म)

शान्ति शान्तिगुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावते सुपंडिते सदा।
 मैं तिन्हें भगतिमंडिते सदा, पूजिहों कलुषहंडिते सदा ॥
 मोच्छ हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुण रत्नमाल हो।
 मैं अबै सुगुनदाम ही धरों, ध्यावतें तुरित मुक्ति-ती-वरों ॥
 (पद्धरि)

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज।
 तुम तजि सरवारथसिद्ध थान, सरवारथजुत गजपुर महान ॥
 तित जन्म लियौ आनंद धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार।
 इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको कर में ले हरष मान ॥
 हरि गोद देय सो मोदधार, सिर चमर अमर ढारत अपार।
 गिरिराज जाय तित शिला पाँडु, तापै थाप्यो अभिषेक माँडु ॥
 तित पंचम उदधितनों सुवार, सुर कर कर करि ल्याये उदार।
 तब इन्द्र सहसकर करि अनन्द, तुम सिर धारा ढार्यो सुनन्द ॥

अघघघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर।
 दृम दृम दृमदृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥
 तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान।
 ताथेई थैइ थैइ थैइ थैइ सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ॥
 चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट झट नट शट विराट।
 इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत जहाँ आनंद संग ॥
 इत्यादि अतुल मंगल सुठाट, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट।
 पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौंध्यौ तुम तित वृद्ध थाय ॥
 पुनि राजमाहिं लहिं चक्ररत्न, भोग्यौ छखंड करि धरम जत्न।
 पुनि तप धरि केवलरिद्धि पाय, भविजीवन को शिवमग बताय ॥
 शिवपुर पहुँचे तुम हे जिनेश, गुणमण्डित अतुल अनंत भेष।
 मैं ध्यावतु हौं निज शीश नाय, हमरी भवबाधा हरि जिनाय ॥
 सेवक अपनो निज जान जान, करुना करि भौभय भान भान।
 यह विघन मूल तरु खण्ड खण्ड, चितचिन्तत आनन्द मंड मंड ॥

(छन्द घत्तानन्द)

श्री शान्ति महंता शिवतियकंता, सुगुन अनन्ता भगवन्ता।
 भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनन्ता, दातारं तारनवन्ता ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णां अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(छन्द रूपक)

शान्तिनाथ जिनके पद पंकज, जो भवि पूजै मनवचकाय।
 जनम-जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय ॥
 मन-वाँछित सुख, पावे सो नर बाँचै भगतिभाव अतिलाय।
 तातैं 'वृन्दावन' नित बन्दै, जातैं शिवपुरराज कराय ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई ।
 तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना ॥
 ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं
 निर्वपामीति स्वाहा ।

सित सातैं सावन आई, शिव-नारि वरी जिन राई ।
 सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्ष-कल्याना ॥
 ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं
 निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(कवित्त)

पारसनाथ जिनेन्द्रतने वच पौनभखी^१ जरते सुन पाये ।
 करो सरधान लह्यो पद आन भये पद्मावति-शेष^२ कहाये ॥
 नाम प्रताप टेरे सन्ताप सुभव्यन को शिव-शर्म दिखाये ।
 हो अश्वसेन के नन्द भले गुण गावत हैं तुमरे हरषाये ॥

(दोहा)

केकी-कण्ठ समान छबि, वपु उतंग नव हाथ ।
 लक्षण उरग निहार पग, वन्दूँ पारसनाथ ॥

(मोतियादाम छन्द)

रची नगरी षट् मास अगार, बने चहुँ गोपुर शोभ अपार ।
 सु कोटतनी रचना छबि देत, कँगूरन पै लहकैं बहु केत ॥
 बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भाँत धनेश तैयार ।
 तहाँ अश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार ॥
 तज्यो तुम प्राणत नाम विमान, भये तिनके घर नन्दन आन ।
 तबै सुर इन्द्र नियोगनि आय, गिरीन्द्र करी विधि न्होन सु जाय ॥
 पिता घर सौंप गये निज धाम, कुबेर करे वसु याम जु काम ।
 बढे जिन दूज मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन ॥

१. नाग-नागिनी, २. धरणेन्द्र

भये जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार ।
 पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो मम आस ॥
 करी तब नाहिं रहे जगचन्द, किये तुम काम कषाय जु मन्द ।
 चढे गजराज कुमारन संग, सु देखत गंगतनी सुतरंग ॥
 लख्यो इक रंक करे तप घोर, चहुँ दिस अगनि बले अतिजोर ।
 कहे जिननाथ अरे सुन भ्रात, करे बहु जीवतनी मत घात ॥
 भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव ।
 लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव-ब्रह्म-ऋषी सुर आय ॥
 तबै सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज-कन्ध मनोग ।
 कस्यो बन माहिं निवास जिनन्द, धरे व्रत चारित आनन्द-कन्द ॥
 गहे तहाँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तनें जु अवास ।
 दियो पयदान महा सुखकार, भई पन वृष्टि तहाँ तिह वार ॥
 गये फिर कानन माहिं दयाल, धस्यो तुम योग सबै अघ टाल ।
 तबै वह धूम सुकेत अयान, भयो कमठाचर को सुर आन ॥
 करैं नभ गौन^१ लखे तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर ।
 कस्यो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकोर ॥
 रह्यो दशहूँ दिश में तम छाये, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय ।
 सुरण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसल धार अथाय ॥
 तबै पद्मावति कन्त धरणेन्द्र, चले जुग आय तहाँ जिनचन्द ।
 भयो तब रंक सु देखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल ॥
 दियो उपदेश महाहितकार, सुभव्यन बोधि सम्मेद पधार ।
 सुवर्णभद्र जहँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसु ऋद्ध ॥
 जजुँ तुम चर्ण दोऊ कर जोर, प्रभू लखिये अब ही मम ओर ।
 कहैं 'बखतावर' रतन बनाय, जिनेश हमें भव-पार लगाय ॥

१. गगन

घननं घननं घनघंट बजै, दृमदृमं दृमदृमं मिरदंग सजै ।
 गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता ॥
 धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसाल जु छाजत है ।
 सननं सननं सननं नभ में, इकरूप अनेक जु धारि भ्रमें ॥
 कइ नारि सुबीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावत हैं ।
 करताल विषैं करताल धरैं, सुरताल विशाल जु नाद करें ॥
 इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करैं प्रभुजी तुमरी ।
 तुम ही जग जीवन के पितु हो, तुम ही बिन कारनतैं हितु हो ॥
 तुम ही सब विघ्नविनाशन हो, तुम ही निज आनन्द भासन हो ।
 तुम ही चितचिंतितदायक हो, जगमाहीं तुम्हीं सब लायक हो ॥
 तुमरे पन मंगल माहिं सही, जिय उत्तम पुण्य लियो सब ही ।
 हमको तुम्हरी सरनागत है, तुमरे गुन में मन पागत है ॥
 प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसुकर्म नहीं नसिये ।
 तबलों तुम ध्यान हिये वरतों, तबलों श्रुतचिन्तन चित्तरतों ।
 तबलों व्रत चारित चाहत हों, तबलों शुभ भाव सुगाहतु हों ॥
 तबलों सतसंगति नित्य रहों, तबलों मम संजम चित्त गहों ॥
 जबलों नहीं नाश करों अरि को, शिवनारि वरों समता धरि को ।
 यह द्यो तबलों हमकों जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी ॥

(घत्तानन्द)

श्रीवीर जिनेशा, नमित सुरेशा, नागनरेशा भगति भरा ।

‘वृन्दावन’ ध्यावै, विघ्न नशावै, वांछित पावै शर्म वरा ॥

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

श्री सनमति के जुगलपद, जो पूजें धर प्रीत ।

‘वृन्दावन’ सो चतुर नर, लहैं मुक्ति नवनीत ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री महावीर पूजन

(डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत)

(स्थापना)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं ।
 जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं ॥
 जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं ।
 वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थकर स्वयं महावीर हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है ।
 मल-हरन निर्मल-करन भागीरथी नीर-समान है ॥
 संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
 वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
 लिपटे रहें विषधर तदपि-चन्दन विटप निर्विष रहें ।

त्यों शान्त शीतल ही रहो रिपु विघ्न कितने ही करें ॥सन्तप्त ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन अक्षत समान अखण्ड हैं ।

हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं ॥सन्तप्त ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर सुभट मारन सूर हैं ।

पर-गन्ध से विरहित तदपि निज-गन्ध से भरपूर हैं ॥सन्तप्त ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों ।

तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीत हो? ॥सन्तप्त ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

यह धूप सुगंधित क्षेप, आतम रम जाऊँ ।
हो अष्ट करम का क्षार, पंचम गति पाऊँ ॥
तुम हो प्रभु वीर महान, सबके हितकारी ।
तुम दिया तत्त्व उपदेश, यह जग उपकारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
ये इष्ट मिष्ट फल थाल, भरकर मैं लाऊँ ।
अर्पित है दीन दयाल, मुक्ति पद पाऊँ ॥तुम ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
सब आठों द्रव्य बनाय, मैं प्रभु लावत हूँ ।
त्रैलोक्य शिखामणि राय, चरण चढ़ावत हूँ ॥तुम ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक अर्घ्य

षष्ठी शुक्ल अषाढ सुशोभै, माता त्रिशला प्रमुदित होवै ।
वीर प्रभुजी गरभ विराजे, कुण्डपुर वासी हरषाये ॥
ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
चैत्र सुदी तेरस दिन जाये, घर-घर मंगलाचार गुंजाये ।
इन्द्र नरेन्द्र सभी मिल गावें, ढोलक ताल मृदंग बजावें ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
मगसिर कृष्ण दशम तप धारा, राजपाट से किया किनारा ।
दुद्धर तप हित हेतु विराजे, नाशा दृष्टि मगन जिनराजे ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
सित दशमी वैशाख जु आए, केवलज्ञान वीर प्रभु पाये ।
तीन लोक में खुशियाँ छाई, महाश्रमण अरिहन्त कहाये ॥
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
कार्तिक कृष्ण अमावस आई, वर्द्धमान प्रभु मुक्ति पाई ।
नश्वर देह विलीन हुई प्रभु सब मिल जगमग ज्योति जलाई ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१७८ // जिनेन्द्र अर्चना

जयमाला

(दोहा)

मैं गाऊँ जयमालिका, सुनलो ध्यान लगाय ।
जग के सब संकट मिटें, भवसागर तिर जाय ॥

(पद्भरि छन्द)

जय महावीर जिनवर महान, जय धीर वीर निर्भीक मान ।
जय ज्ञान अनन्तानन्त जान, जय सन्मति दायक वर्द्धमान ॥१॥
तुम सिद्धारथ नृप के कुमार, तुमको सब वन्दत बार-बार ।
तुम त्रिशला नन्दन गुण अनन्त, जग तुम्हें मानता दुख हरन्त ॥२॥
हे नाथ! वैशाली गणनायक, हो विदेह कुण्डपुर प्रतिपालक ।
यह जग नश्वर है लिया जान, तज राज-पाट फिर किया ध्यान ॥३॥
सन्मति कैवल्य प्रभावक हो, दुःख भंजक सुख के दायक हो ।
पतितों के नाथ सहायक हो, तुम प्रभुवर गुण के गाहक हो ॥४॥
जिनवर ध्वनि गुँजे दिग् दिगन्त, चहुँओर निशा का हुआ अन्त ।
सद्ज्ञान मिला बढ गई आस, ढिंग बैठ करें श्रुत का अभ्यास ॥५॥
मृग-सिंह सबको ही हुआ बोध, सम्मुख बैठे तज दिया क्रोध ।
अब नहीं किसी में बैर-भाव, अतिशयकारी सन्मति प्रभाव ॥६॥
गौतम को गणधर लिया मान, हो गया जिन्हें कैवल्यज्ञान ।
पावापुर का जगमग उद्यान, प्रभु महावीर पाया निर्वाण ॥७॥
सब नृप करते श्रद्धा अपार, अविरल गिरती थी अश्रुधर ।
रज माथ लगाते बार-बार, अब नहीं जगत में कहीं सार ॥८॥
यह 'अखिल' जगत शरणागत है, निर्ग्रन्थ छवि को निहारत है ।
सबको मुक्ति की चाहत है, प्रभु जाप जपै सुख पावत है ॥९॥

(धत्ताछन्द)

महावीर जिनन्दं, आनन्द कन्दं, दुःखनिकन्दं सुखकारी ।
प्रभु गुण गाऊँ, भाव जगाऊँ, कीर्ति बढ़ाऊँ मनहारी ॥

(दोहा)

महावीर के दर्शन कर, हो गया धन्य मैं आज ।
'अखिल' जगत सब सुखी हों, वर्द्धमान जिनराज ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जिनेन्द्र अर्चना // १७९

श्री सप्तर्षि पूजन

(श्री रंगलालजी कृत)

स्थापना (छप्पय)

प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर ।

तृतीय मुनि श्री निचय सर्वसुन्दर चौथो वर ॥

पंचम श्री जयवान विनयलालस षष्ठम भनि ।

सप्तम जय मित्राख्य सर्व चारित्र-धाम गनि ॥

ये सातों चारण-ऋद्धि-धर, करूँ तास पद थापना ।

मैं पूजूँ मन-वचन-काय करि, जो सुख चाहूँ आपना ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षीश्वराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षीश्वराः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षीश्वराः ! अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट् ।

(हरिगीतिका)

शुभ-तीर्थ-उद्भव-जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकै ।

भव-तृषा-कंद-निकंद-कारण, शुद्ध घट भरवायकै ॥

मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिन की पूजा करूँ ।

ता करें पातक हरे सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमनु-स्वरमन्व-निचय-सर्वसुन्दर-जयवान्-विनयलालस-जयमित्राख्य-
चारणर्द्धिधारि सप्तर्षिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द-मन्द घिसायकै ।

तसु गंध प्रसरित दिग-दिगन्तर, भर कटोरी लायकै ॥मन्वादि ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अति धवल अक्षत खण्ड-वर्जित, मिष्ट राजत भोग के ।

कलधौत-थारा भरत-सुन्दर, चुनित शुभ उपयोग के ॥मन्वादि ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

बहु-वर्ण सुवर्ण-सुमन आछै, अमल कमल गुलाब के ।

केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निज कर चावके ॥मन्वादि ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

१८८ // जिनेन्द्र अर्चना

पकवान नाना भाँति चातुर, रचित शुद्ध नये-नये ।

सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरट के थारा लये ॥

मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिन की पूजा करूँ ।

ता करें पातक हरे सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कलधौत-दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृत-सारसों ।

अतिज्वलित जग-मग ज्योति जाकी, तिमिर नाशनहारसों ॥मन्वादि ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दिक्-चक्र गन्धित होत जाकर, धूप दश-अंगी कही ।

सो लाय मन-वच-काय शुद्ध, लगाय कर खेऊँ सही ॥मन्वादि ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकै ।

द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर-भर लायकै ॥मन्वादि ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल-गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना ।

फल ललित आठौँ द्रव्य-मिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना ॥मन्वादि ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(घत्ता)

वन्दूँ ऋषिराजा, धर्म-जहाजा, निज-पर-काजा करत भले ।

करुणा के धारी, गगन-विहारी दुःख-अपहारी भरम दले ॥

काटत जम-फन्दा, भवि-जन वृन्दा, करत अनन्दा चरणन में ।

जो पूजै ध्यावै, मंगल गावै, फेर न आवै भव-वन में ॥

(पद्धरि छन्द)

जय श्रीमनु मुनिराजा महन्त, त्रस-थावर की रक्षा करन्त ।

जय-मिथ्या-तम-नाशक पतंग, करुणा रस-पूरित अंग-अंग ॥

जिनेन्द्र अर्चना // १८९

जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पद-सेव करत नित अमर-भूप ।
जय पंच अक्ष जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान ॥
जय निचय सप्त तत्त्वार्थ भास, तप-रमातनों तन में प्रकाश ।
जय विषय-रोध सम्बोध भान, परणति के नाशक अचल ध्यान ॥
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल, लखि इन्द्रजालवत जगत-जाल ।
जय तृष्णाहारी रमण राम, निज-परिणति में पायो विराम ॥
जय आनन्दघन कल्याणरूप, कल्याण करत सबकौ अनूप ।
जय मद-नाशन जयवानदेव, निरमद विरचित सब करत सेव ॥
जय जयहिं विनयलालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान ।
जय कृशित-काय तपके प्रभाव, छबि छटा उड़ति आनन्द दाय ॥
जय मित्र सकल जगके सुमित्र, अनगिनत अधम कीने पवित्र ।
जय चन्द्र-वदन राजीव नैन, कबहूँ विकथा बोलत न बैन ॥
जय सातों मुनिवर एक संग, नित गगन-गमन करते अभंग ।
जय आये मथुरापुर मँझार, तहँ मरी रोग को अति प्रसार ॥
जय-जय तिन चरणनि के प्रसाद, सब मरी देवकृत भई वाद ।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमत सदा नित जोड़ हस्त ॥
जय ग्रीष्म-ऋतु पर्वत मँझार, नित करत अतापन योगसार ।
जय तृषा-परीषह करत जेर, कहूँ रंच चलत नहिं मन सुमेर ॥
जय मूल अठाइस गुणनधार, तप उग्र तपत आनन्दकार ।
जय वर्षा-ऋतु में वृक्ष तीर, तहं अति शीतल झेलत समीर ॥
जय शीत-काल चौपट मँझार, कै नदी सरोवर तट विचार ।
जय निवसत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहिं भटकत रोम कोय ॥
जय मृतकासन वज्रासनीय, गौदूहन इत्यादिक गनीय ।
जय आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार ॥

जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय ।
जय भरे लक्ष अतिशय भण्डार, दारिद्रतनो दुःख होय छार ॥
जय चोर अगनि डाकिन पिशाच, अरु ईति-भीति सब नसत साँच ।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नमत पद देत धोक ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणद्धिर्धरसप्तर्षिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(रोला)

ये सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी ।
परमपूज्य पद धरें सकल जग के हितकारी ॥
जो मन वच तन शुद्ध होय सेवे औ ध्यावै ।
सो जन-मन 'रंगलाल', अष्ट ऋद्धिन कौ पावै ॥

(दोहा)

नमन करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज ।
पंच परावर्तननिर्ते, निरवारो ऋषिराज ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भजन

श्री जिनवर पद ध्यावें जे नर, श्री जिनवर पद ध्यावें हैं ॥टेक॥
तिनकी कर्म कालिमा विनशे, परम ब्रह्म हो जावें हैं ।
उपल-अग्नि संयोग पाय जिमि, कंचन विमल कहावें हैं ॥१॥
चन्द्रोज्ज्वल जस तिनको जग में, पण्डित जन नित गावें हैं ।
जैसे कमल सुगन्ध दशों दिश, पवन सहज फैलावें हैं ॥२॥
तिनहि मिलन को मुक्ति सुन्दरी, चित अभिलाषा लावें हैं ।
कृषि में तृण जिमि सहज उपजियो, स्वर्गादिक सुख पावें हैं ॥३॥
जनम-जरा-मृत दावानल ये, भाव सलिल तैं बुझावें हैं ।
'भागचंद' कहाँ ताई वरने, तिनहि इन्द्र शिर नावें हैं ॥४॥

सरस्वती पूजन

(पं. दानतरायजी कृत)

(दोहा)

जनम-जरा-मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति ।

भवसागरसों ले तिरै, पूजै जिन वच प्रीति ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

(त्रिभंगी)

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा ।

भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचंगा ॥

तीर्थकर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई ।

सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी ।

शारदपद वंदों, मन अभिनंदों, पाप निकंदों दाह हरी ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं ।

बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनन्दरासं लाय धरे ।

मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विधि भाया मिष्ट महा ।

पूजूं थुति गाऊं, प्रीति बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं हर्ष लहा ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. निर्वपामीति स्वाहा ।

करि दीपक ज्योतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै ।

तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़ै ॥

तीर्थकर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई ।

सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

१९२ // जिनन्द्र अर्चना

शुभगंध दर्शोकर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं ।

सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं ।

मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता गावत हैं ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

नयनन सुखकारी, मूदु गुणधारी, उज्ज्वल भारी मोल धरैं ।

शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञानप्राप्तये वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल चन्दन अच्छत, फूल चरु चत, दीप धूप फल अति लावैं ।

पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर दानत सुख पावैं ॥ तीर्थकर ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(सोरठा)

ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल ।

नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै ॥

(चौपाई)

पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो ।

दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥

तीजो ठाना अंग सु जानं, सहस बियालिस पद सरधानं ।

चौथो समवायांग निहारं, चौंसठ सहस लाख इक धारं ॥

पंचम-व्याख्या प्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्टाइस सहसं ।

छट्टो ज्ञातृकथा विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं ॥

सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यार लख भंगं ।

अष्टम अन्तःकृत दश ईसं, सहस अट्टाइस लाख तेईसं ॥

नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं ।

दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवै सोल हजारं ॥

ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं ।

चार कोड़ि अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं ॥

द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इक सौ आठ कोड़िपनवेदं ।

अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं ॥

जिनन्द्र अर्चना // १९३

मन-वच-काया की चंचलता, कर्म आस्रव करती है।
 चार कषायों की छलना ही, भवसागर दुःख भरती है॥
 भवाताप के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
 अक्षय-तृतिया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।
 इन्द्रिय विषयों के सुख क्षणभंगुर, विद्युत-सम चमक अथिर।
 पुण्य-क्षीण होते ही आते, महा असाता के दिन फिर॥
 पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।टेक॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
 शील विनय व्रत तप धारण, करके भी यदि परमार्थ नहीं।
 बाह्य क्रियाओं में उलझे तो, वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं॥
 कामबाण के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।टेक॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामिति स्वाहा।
 विषय लोलुपी भोगों की, ज्वाला में जल-जल दुख पाता।
 मृग-तृष्णा के पीछे पागल, नर्क-निगोदादिक जाता॥
 क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।टेक॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
 ज्ञानस्वरूप आत्मा का, जिसको श्रद्धान नहीं होता।
 भव-वन में ही भटका करता, है निर्वाण नहीं होता॥
 मोह-तिमिर के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।टेक॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
 कर्म फलों का वेदन करके, सुखी दुखी जो होता है।
 अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन, सदा उसी को होता है॥
 कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।टेक॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
 जो बन्धन से विरक्त होकर, बन्धन का अभाव करता।
 प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को, पृथक् शीघ्र निज से करता॥

महामोक्ष-फल प्राप्ति हेतु, मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
 अक्षय-तृतिया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
 पर मेरा क्या कर सकता है, मैं पर का क्या कर सकता।
 यह निश्चय करनेवाला ही, भव-अटवी के दुख हरता॥
 पद अनर्घ्य की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।टेक॥
 ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण।
 औषधि भोजन अभय अरु, सद् शास्त्रों का ज्ञान॥

(ताटक)

पुण्य पर्व अक्षय तृतीया का, हमें दे रहा है यह ज्ञान।
 दान धर्म की महिमा अनुपम, श्रेष्ठ दान दे बनो महान॥
 दान धर्म की गौरव गाथा, का प्रतीक है यह त्यौहार।
 दान धर्म का शुभ प्रेरक है, सदा दान की जय-जयकार॥
 आदिनाथ ने अर्ध वर्ष तक, किये तपस्या-मय उपवास।
 मिली न विधि फिर अन्तराय, होते-होते बीते छह मास॥
 मुनि आहारदान देने की, विधि थी नहीं किसी को ज्ञात।
 मौन साधना में तन्मय हो, प्रभु विहार करते प्रख्यात॥
 नगर हस्तिनापुर के अधिपति, सोम और श्रेयांस सुभ्रात।
 ऋषभदेव के दर्शन कर, कृतकृत्य हुए पुलकित अभिजात॥
 श्रेयांस को पूर्वजन्म का, स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार।
 विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को, दिया इक्षुरस का आहार॥

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण ।
 क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण ॥
 श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन ।
 मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥
 ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
 क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण ।
 विषयभोग की आकांक्षा हर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री. ॥
 ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
 चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीपज्योति करता अर्पण ।
 सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री. ॥
 ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
 अष्ट कर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण ।
 सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री. ॥
 ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
 मुक्ति प्राप्ति हित उत्तम फल चरणों में करता हूँ अर्पण ।
 मैं सम्यक्चारित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री. ॥
 ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
 शाश्वत पद अनर्घ्य पाने को उत्तम अर्घ्य करूँ अर्पण ।
 रत्नत्रय की तरणी खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री. ॥
 ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं
 निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

वात्सल्य के अंग की, महिमा अपरम्पार ।
 विष्णुकुमार मुनीन्द्र की, गूँजी जय-जयकार ॥

(तांटक)

उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मंत्री थे चार ।
 बलि, प्रह्लाद, नमुचि बृहस्पति चारों अभिमानी सविकार ॥
 जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया ।
 सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षाया ॥
 सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निंदा की ।
 कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की ॥
 किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये ।
 वाद-विवाद किया श्री मुनि से, हारे, जीत नहीं पाये ॥
 अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये ।
 खड्ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये ॥
 प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन ।
 देश-निकाला दिया मंत्रियों को तब राजा ने तत्क्षण ॥
 चारों मंत्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर ।
 राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर ॥
 मुँह-माँगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर ।
 जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर ॥
 फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये ।
 बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये ॥
 कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया ।
 भीषण अग्नि जलाई चारों ओर द्वेष से कार्य किया ॥
 हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए ।
 नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए ॥
 यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढोंग विचित्र ।
 दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र ॥

क्षमावाणी पूजन
(श्री राजमलजी पवैया कृत)
(स्थापना)
(छन्द-ताटक)

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को संदेश ।
उत्तम क्षमाधर्म को धारो जो अतिभव्य जीव का वेश ॥
मोह नींद से जागो चेतन अब त्यागो मिथ्याभिनिवेश ।
द्रव्यदृष्टि बन निजस्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धों के देश ॥
क्षमा, मार्दव, आर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ ।
त्याग, तपस्या, आर्किंचन, व्रत ब्रह्मचर्यमय हो जाओ ॥
एक धर्म का सार यही है समतामय ही बन जाओ ।
सब जीवों पर क्षमाभाव रख स्वयं क्षमामय हो जाओ ॥
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग में सार ।
तीन लोक में गूँज रही है क्षमावाणी की जय-जयकार ॥
ज्ञाता-द्रष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष ।
रागों से विरक्त हो जाओ रहे न दुख का किंचित् लेश ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

जीवादिक नव तत्त्वों का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम ।
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादिक का त्याग चरित्र परम ॥
'संते पुव्वणिबद्धं जाणदि'^१ वह अबंध का ज्ञाता है ।
सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव बंधरहित हो जाता है ॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ ॥१ ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सप्त भयों से रहित निशंकित निजस्वभाव में सम्यग्दृष्टि ।
मिथ्यात्वादिक भावों में जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि ॥

१. समयसार, गाथा १६६ - सत्ता में रहे हुए पूर्वबद्ध कर्मों को जानता है ।

तीन मूढ़ता छह अनायतन तीन शल्य का नाम नहीं ।
आठ दोष समकित के अरु आठों मद का कुछ काम नहीं ॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म मरण क्षय कर मानूँ ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वरूप को पहचानूँ ॥ उत्तम ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अशुभ कर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता रे ।
जो संसार बंध का कारण वह कुशील जानता न रे ॥
कर्म फलों के प्रति जिनकी आकांक्षा उर में रही नहीं ।
वह निकांक्षित सम्यग्दृष्टी भव की वांछा रही नहीं ॥ उत्तम ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

राग शुभाशुभ दोनों ही संसार भ्रमण का कारण है ।
शुद्धभाव ही एकमात्र परमार्थ भवोदधि तारण है ॥
वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं ।
निर्विचिकित्सक जीव वही है निश्चय सम्यग्दृष्टि वही ॥ उत्तम ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है ।
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है ॥
पर भावों में जो न मूढ़ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी ।
वह अमूढ़दृष्टि का धारी सम्यग्दृष्टि सदा उसकी ॥ उत्तम ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

राग-द्वेष मोहादिक आस्रव ज्ञानी को होते न कभी ।
ज्ञाता-द्रष्टा को ही होते उत्तम संवर भाव सभी ॥
शुद्धात्म की भक्ति सहित जो पर भावों से नहीं जुड़ा ।
उपगूहन का अधिकारी है सम्यग्दृष्टि महान बड़ा ॥ उत्तम ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपमालिका पर्व पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(वीरछन्द)

महावीर निर्वाण दिवस पर, महावीर पूजन कर लूँ।
वर्द्धमान अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ।
पावापुर से मोक्ष गये प्रभु, जिनवर पद अर्चन कर लूँ।
जगमग जगमग दिव्यज्योति से, धन्य मनुजजीवन कर लूँ।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, शुद्धभाव मन में भर लूँ।
दीपमालिका पर्व मनाऊँ, भव-भव के बन्धन हर लूँ।
ज्ञान-सूर्य का चिर-प्रकाश ले, रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ।
परभावों का राग तोड़कर, निजस्वभाव में मैं अड़ लूँ।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो
भव भव वषट् ।

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल, निजस्वभाव मय जल भर लूँ।
जन्म-मरण का चक्र मिटाऊँ, भव-भव की पीड़ा हर लूँ।
दीपावलि के पुण्य दिवस पर, वर्द्धमान पूजन कर लूँ।
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्तया श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, निज चन्दन उर में धर लूँ।

चारों गति का ताप मिटाऊँ, निज पंचमगति आदर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अजर अमर अक्षय अविक्ल, अनुपम अक्षतपद उर धर लूँ।

भवसागर तर मुक्ति वधू से, मैं पावन परिणय कर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

२१४ // जिनेन्द्र अर्चना

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूँ।

काम-बाण की व्यथा नाश कर मैं निष्काम रूप धर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

आत्मशक्ति परिपूर्ण शुद्ध नैवेद्य भाव उर में धर लूँ।

चिर-अतृप्ति का रोग नाशकर, सहज तृप्त निज पद वर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित, ज्ञानदीप ज्योतित कर लूँ।

मिथ्या-भ्रम-तम-मोह नाशकर, निज सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

पुण्यभाव की धूप जलाकर, घाति-अघाति कर्म हर लूँ।

क्रोध-मान-माया-लोभादि, मोह-द्रोह सब क्षय कर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर, श्रेष्ठ मोक्षपद उर धर लूँ।

अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्धगति, पा सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

गुण अनन्त प्रकटाऊँ अपने, निज अनर्घ्य पद को वर लूँ।

शुद्धस्वभावी ज्ञान-प्रभावी, निज सौन्दर्य प्रकट कर लूँ।।दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय
अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनेन्द्र अर्चना // २१५

पंचकल्याणक अर्घ्य

शुभ आषाढ शुक्ल षष्ठी को, पुष्पोत्तर तज प्रभु आये ।
माता त्रिशला धन्य हो गई, सोलह सपने दरशाये ॥
पन्द्रह मास रत्न बरसे, कुण्डलपुर में आनन्द हुआ ।
वर्द्धमान के गर्भोत्सव पर, दूर शोक-दुख-द्वंद्व हुआ ॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, सारी जगती धन्य हुई ।
नृप सिद्धार्थराज हर्षाये, कुण्डलपुरी अनन्य हुई ॥
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में, सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक ।
नृत्य वाद्य मंगल गीतों के, द्वारा किया हर्ष अतिरेक ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मगसिर कृष्णा दशमी को, उर में छाया वैराग्य अपार ।
लौकान्तिक देवों के द्वारा धन्य-धन्य प्रभु जय-जय कार ॥
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी, वीर प्रभु ने किया प्रयाण ।
वन में जाकर दीक्षा धारी, निज में लीन हुए भगवान ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्वादश वर्ष तपस्या करके, पाया तुमने केवलज्ञान ।
कर बैसाख शुक्ल दशमी को, त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान ॥
सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को, युगपत् एक समय में जान ।
वर्द्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु, वीतराग अरिहन्त महान ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, वर्द्धमान प्रभु मुक्त हुए ।
सादि-अनन्त समाधि प्राप्त कर, मुक्ति-रमा से युक्त हुए ॥
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा, कर अघातिया का अवसान ।
शेष प्रकृति पच्यासी को भी, क्षय करके पाया निर्वाण ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

२१६ // जिनेन्द्र अर्चना

जयमाला

महावीर ने पावापुर से, मोक्षलक्ष्मी पाई थी ।
इन्द्र-सुरों ने हर्षित होकर, दीपावली मनाई थी ॥
केवलज्ञान प्राप्त होने पर, तीस वर्ष तक किया विहार ।
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने, दे उपदेश किया उपकार ॥
पावापुर उद्यान पधारे, योगनिरोध किया साकार ।
गुणस्थान चौदह को तजकर, पहुँचे भवसमुद्र के पार ॥
सिद्धशिला पर हुए विराजित, मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार ।
जल-थल-नभ में देवों द्वारा गूँज उठी प्रभु की जयकार ॥
इन्द्रादिक सुर हर्षित आये, मन में धारे मोद अपार ।
महामोक्ष कल्याण मनाया, अखिल विश्व को मंगलकार ॥
अष्टादश गणराज्यों के, राजाओं ने जयगान किया ।
नत-मस्तक होकर जन-जन ने, महावीर गुणगान किया ॥
तन कपूरवत् उड़ा शेष नख, केश रहे इस भूतल पर ।
मायामयी शरीर रचा, देवों ने क्षण भर के भीतर ॥
अग्निकुमार सुरों ने झुक, मुकुटानल से तन भस्म किया ।
सर्व उपस्थित जनसमूह, सुरगण ने पुण्य अपार लिया ॥
कार्तिक कृष्ण अमावस्या का, दिवस मनोहर सुखकर था ।
उषाकाल का उजियारा कुछ, तम-मिश्रित अति मनहर था ॥
रत्न-ज्योतियों का प्रकाश कर, देवों ने मंगल गाये ।
रत्न-दीप की आवलियों से, पर्व दीपमाला लाये ॥
सब ने शीश चढ़ाई भस्मी, पद्म सरोवर बना वहाँ ।
वही भूमि है अनुपम सुन्दर, जल मन्दिर है बना वहाँ ॥
प्रभु के ग्यारह गणधर में थे, प्रमुख श्री गौतम स्वामी ।
क्षपकश्रेणि चढ़ शुक्लध्यान से हुए देव अन्तर्यामी ॥

जिनेन्द्र अर्चना // २१७

इसी दिवस गौतम स्वामी को, सन्ध्या केवलज्ञान हुआ।
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई, पद सर्वज्ञ महान हुआ ॥
देवों ने अति हर्षित होकर, रत्न-ज्योति का किया प्रकाश।
हुई दीपमाला द्विगुणित, आनन्द हुआ छाया उल्लास ॥
प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर, हो जाता मन अति पावन।
परम पूज्य निर्वाणभूमि शुभ, पावापुर है मन-भावन ॥
अखिल जगत में दीपावली, त्यौहार मनाया जाता है।
महावीर निर्वाण महोत्सव, धूम मचाता आता है ॥
हे प्रभु! महावीर जिन स्वामी, गुण अनन्त के हो धामी।
भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थकर, जिनराज विश्वनामी ॥
मेरी केवल एक विनय है, मोक्ष-लक्ष्मी मुझे मिले।
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में, मेरी श्रद्धा नहीं हिले ॥
भव-भव जन्म-मरण के चक्कर, मैंने पाये हैं इतने।
जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुख उतने ॥
अवसर आज अपूर्व मिला है, शरण आपकी पाई है।
भेदज्ञान की बात सुनी है, तो निज की सुधि आई है ॥
अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ।
दो आशीर्वाद हे स्वामी! नित्य नये मंगल गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय
जयमालापूरार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

दीपमालिका पर्व पर, महावीर उर धार।
भावसहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्रुतपंचमी पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

स्याद्वादमय द्वादशांगयुत माँ जिनवाणी कल्याणी।
जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी ॥
जय जय जय हितकारी शिवसुखकारी माता जय जय जय।
कृपा तुम्हारी से ही होता भेदज्ञान का सूर्य उदय ॥
श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान।
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षट्खण्डागम रचा महान ॥
अंकलेश्वर में ग्रंथराज यह पूर्ण हुआ था आज के दिन।
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन ॥
ज्येष्ठशुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जय-जयकार हुआ।
श्रुतपंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र कर लूँ।
साम्यभाव पीयूष पान कर जन्म-जरामय दुख हर लूँ ॥
श्रुतपंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ।
षट्खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ।
भव दावानल के ज्वालामय अघसंताप ताप हर लूँ ॥श्रुत ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ।
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ ॥श्रुत ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वयंभूस्तोत्र (भाषा)

(पं. दानतरायजी कृत)

(चौपाई)

राजविषै जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिवपद लियो ।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, बन्दौ आदिनाथ गुणखान ॥
इन्द्र क्षीरसागर-जल लाय, मेरु न्हावाये गाय बजाय ।
मदन-विनाशक सुख करतार, बन्दौ अजित अजित-पदकार ॥
शुक्ल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति-अघाति सकल दुखराशि ।
लह्यो मुक्तिपद सुख अविकार, बन्दौ सम्भव भव-दुःख टार ॥
माता पच्छिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार ।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बन्दौ अभिनन्दन मन लाय ॥
सब कुवादावादी सरदार, जीते स्याद्वाद-धुनि धार ।
जैन-धरम-परकाशक स्वाम, सुमतिदेव-पद करहुँ प्रनाम ॥
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय ।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौ पदमप्रभु सुख की रास ॥
इन्द्र फनिन्द नरिन्द त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल^१ ।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौ सुपारसनाथ निहार ॥
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं ।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौ चन्द्रप्रभ राख समीप ॥
द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश ।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बन्दौ पुहुपदन्त मन आन ॥
भवि-सुखदाय सुरगतें आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय ।
आप समान सबनि सुख देह, बन्दौ शीतल धर्म-सनेह ॥
समता-सुधा कोप-विष नाश, द्वादशांग वानी परकाश ।
चार संघ आनंद-दातार, नमौ श्रियांस जिनेश्वर सार ॥
रत्नत्रय चिर मुकुट विशाल, सोभै कण्ठ सुगुन मनि-माल ।
मुक्ति-नार भरता भगवान, वासुपूज्य बन्दौ धर ध्यान ॥
परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी-ध्यानी हित-उपदेश ।
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसन्त, बन्दौ विमलनाथ भगवन्त ॥

अन्तर-बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि ।
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमौ अनन्त वचन-मन लाय ॥
सात तत्त्व पंचास्तिकाय, अरथ नवों छ दरब बहु भाय ।
लोक अलोक सकल परकास, बन्दौ धर्मनाथ अविनाश ॥
पंचम चक्रवर्ती निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग ।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ बन्दौ हरषाय ॥
बहु थुति करे हरष नहिं होय, निन्दे दोष गहैं नहिं कोय ।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, बन्दौ कुन्थुनाथ शिव-भूप ॥
द्वादश गण^१ पूजै सुखदाय, थुति वन्दना करै अधिकाय ।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, बन्दौ अर-जिनवर-पद दोय ॥
पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह-समय वैराग ।
बाल-ब्रह्म पूरन-व्रत धार, बन्दौ मल्लिनाथ जिनसार ॥
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पग लाग ।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौ मुनिसुव्रत व्रत देहि ॥
श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भाव सों दियो अहार ।
बरसी रतन-राशि तत्काल, बन्दौ नमिप्रभु दीन-दयाल ॥
सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वय बन्धन तोर ।
रजमति तजि शिव-तिय सों मिले, नेमिनाथ बन्दौ सुखनिले ॥
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार ।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमौ मेरु-सम पारसस्वाम ॥
भव-सागर तैं जीव अपार, धरम-पोत में धरे निहार ।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बन्दौ बहु बार ॥

(दोहा)

चौबीसों पद-कमल-जुग, बन्दौ मन-वच-काय ।

‘दानत’ पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

८. श्री चन्द्रप्रभ भगवान का अर्घ्य

(अवतार)

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों ।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों ॥
श्री चंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै,
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

९. श्री पुष्पदन्त भगवान का अर्घ्य

(चाल होली)

जल फल सकल मिलाय मनोहर, मन-वच-तन हुलसाय ।
तुम पद पूजौं प्रीति लायकै, जय जय त्रिभुवनराय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१०. श्री शीतलनाथ भगवान का अर्घ्य

(वसंततिलका)

कंश्रीफलादि^१ वसु प्रासुक द्रव्य साजै ।
नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजै ॥
रागादि दोष मलमर्दन हेतु येवा ।
चर्चों पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

११. श्री श्रेयांसनाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीता)

जल मलय तंदुल सुमन चरु अरु दीप धूप फलावली ।
करि अर्घ्य चर्चों चरनजुग प्रभु मोहि तार उतावली ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवनवन्द आनन्दकन्द हैं ।
दुख दन्द-फन्द निकन्द पूरनचन्द जोति अमन्द हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१. जल

२३२ // जिनेन्द्र अर्चना

१२. श्री वासुपूज्य भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

जल-फल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई ।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई ॥
वासुपूज वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई ।
बालब्रह्मचारी लिखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१३. श्री विमलनाथ भगवान का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरब सँवार, मन-सुखदायक पावने ।
जजों अर्घ्य भर थार, विमल विमल शिवतिय रमन ॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१४. श्री अनन्तनाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीता)

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरों ।
अरु धूप फल जुत अरघ करि, कर जोर जुग विनती करों ॥
जगपूज परमपुनीत मीत, अनन्त संत सुहावनों ।
शिवकंतवंत महंत ध्यावो, भ्रन्तवन्त नशावनों ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

१५. श्री धर्मनाथ भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

आठों दरब साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुन गाई ।
बाजत दृम दृम दृम मृदंग गत, नाचत ता थेई थाई ॥
परम धरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन शरन निहारी ।
पूजू पाय गाय गुन सुन्दर, नाचौं दै दै तारी ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनेन्द्र अर्चना // २३३

अर्घ्यावलि

देव-शास्त्र-गुरु का अर्घ्य
(गीता)

(१) जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ ।
वर धूप निरमल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ ॥
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूँ ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥

(दोहा)

वसु विधि अर्घ्य संजोयकै, अति उछाह मन कीन ।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(२) क्षण भर निजरस को पी चेतन मिथ्यामल को धो देता है ।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है ॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जग-मग करता है ।
दर्शन-बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहंत अवस्था है ॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा ।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अरहन्त अवस्था पाऊँगा ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(३) बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता ।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता ॥
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया ।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचपरमेष्ठी का अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

२३८ // जिनेन्द्र अर्चना

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (संस्कृत)

(वसन्ततिलका)

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं,
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्य बीजं,
वन्दे सदा निरुपमं वर सिद्धचक्रम् ॥

(अनुष्टुप)

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम् ।

सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (हिन्दी)

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की ।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की ॥
सुरभि धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया ।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया ॥
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझ को स्वभाव का भान हुआ ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ ॥
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चौबीस तीर्थकर का अर्घ्य

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों ।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द कन्द सही ।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनेन्द्र अर्चना // २३९

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू बसैं ।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥
निज माहिं लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित भये ।
रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया ।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया ॥१३॥
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥१४॥
यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये ॥
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै ।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि दाव मत चूको यहै ॥१५॥

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख ।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पाओ भव-कूल ॥१६॥

१भोंदू धनहित अघ करे, अघ से धन नहीं होय ।
धरम करत धन पाइये, मन-वच जानो सोय ॥

भक्तामरस्तोत्रम्

(आचार्य मानतुंग कृत)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥
यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥
वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥
सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥
अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाग्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतुः ॥६॥

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
 सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि रुद्धा ।
 गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता
 दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥
 शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते
 लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
 प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या
 दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥
 स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेषुः
 सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।
 दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
 भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणै प्रयोज्यः ॥३५॥
 उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ती
 पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।
 पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
 पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥
 इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
 धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य ।
 यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
 तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥
 श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
 मत्तभ्रमद् भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम् ।
 ऐरावताभिमिभमुद्धतमापतन्तं
 दृष्ट्वा भयं भवन्ति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥
 भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
 मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः ।

बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि
 नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥
 कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं
 दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
 विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
 त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥
 रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं
 क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
 आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्क
 स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥
 वल्गतुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
 माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
 उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं
 त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥
 कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
 वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे ।
 युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
 स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥
 अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र
 पाठीन-पीठ-भय-दोल्बण-वाडवाग्नौ ।
 रंगतरंग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
 स्नासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥
 उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः
 शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः ।
 त्वत्पाद-पंकज-रजोमृत-दिग्ध-देहा
 मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥

नारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥ औदारिक-
वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥
प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥ अनन्तगुणे परे ॥३९॥
अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि
भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥
गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धि-
प्रत्ययं च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं
प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥ नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न
देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिक-चरमोत्तम-देहाऽसंख्येय-
वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीय अध्याय

रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो
घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशति-
पंचदशदश-त्रि-पञ्चोत्तम-नरक-शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥
नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणामदेह-वेदना-विक्रियाः ॥३॥
परस्परोदीरित-दुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक्
चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेक-त्रि-सप्तदश-सप्तदश-द्वाविंशति-
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयः
शुभनामानो द्वीप-समुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो
वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजन-शतसहस्रविष्कम्भो
जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः
क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनःपूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-
रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-
हेममयाः ॥१२॥ मणि-विचित्र-पाशर्वा उपरिमूले च तुल्य-
विस्ताराः ॥१३॥ पद्म-महापद्म-तिगिच्छ-केशरि-महापुण्डरीक-
३०४ // जिनेन्द्र अर्चना

पुण्डरीका हृदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदूर्ध्वविष्कम्भो
हृदः ॥१५॥ दश-योजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥
तद्विगुण-द्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-
ही-घृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-
परिषत्काः ॥१९॥ गंगा-सिन्धुरोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-
सीतोदा-नारी-नरकान्तासुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्म-
ध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥
चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गंगा-सिन्धवादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः
षड्विंशति-पंचयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा-
योजनस्य ॥२४॥ तद्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा
विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिहासौ
षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा-
भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपम-स्थितयो हैमवतक-
हारिवर्षक-दैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येय-
कालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः ॥३२॥
द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राडमानुषोत्तरा-
न्मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावत-विदेहाः
कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे
त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ॥२॥ दशाष्ट-
पंच-द्वादश-विकल्पाः कल्पोपन्न-पर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्र-सामानिक-
त्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्बिषिका-
श्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशल्लोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥५॥
जिनेन्द्र अर्चना // ३०५

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ काय प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्श-रूप-
शब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोऽसुरनाग-
विद्युत्सुपर्णाग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः
किन्नर-किंपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूतपिशाचाः ॥११॥
ज्योतिष्काः सूर्यचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्रप्रकीर्णक-तारकाश्च ॥१२॥ मेरु-
प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके ॥१३॥ तत्कृतः काल-विभागः ॥१४॥
बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पाती-
ताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-
ब्रह्मोत्तरलान्तव-कापिष्ठशुक्रमहाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणत-
योरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्तापराजितेषु
सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धीन्द्रिया-
वधि-विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥
पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयके भ्यः
कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्य-
वह्न्यरुण-गर्दतोयतुषिता-व्याबाधारिष्ठाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्वि-
चरमाः ॥२६॥ औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥
स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध-हीन-
मिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमार-
माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पंचदशभिरधिकानि
तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ
च ॥३२॥ अपरापल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतः परतःपूर्वा
पूर्वानन्तराः ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दश-वर्ष-सहस्राणि
प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा
पल्योपममधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्ट-
भागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

३०६ // जिनेन्द्र अर्चना

पंचम अध्याय

अजीवकाया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥
जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गला ॥५॥ आ
आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा
धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च
पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशोऽवगाहः ॥१२॥
धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषुभाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥
असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥१५॥ प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां
प्रदीपवत् ॥१६॥ गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥
आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीर-वाङ्मनःप्राणापानाः
पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुखदुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च ॥२०॥
परस्परुपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च
कालस्य ॥२२॥ स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः-पुद्गलाः ॥२३॥ शब्द-बन्ध-
सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवः
स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेद-
संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्य-लक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्य-
युक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥
स्निग्धरुक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥ न जघन्य-गुणानाम् ॥३४॥ गुण-साम्ये
सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकदि-गुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ
पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८॥
सोऽनन्तसमयः ॥३९॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४०॥ कालश्च ॥४१॥
तद्भावः परिणामः ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठ अध्याय

काय-वाङ् मनःकर्म योगः ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः
पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥४॥
इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पञ्चचतुः पञ्च-पञ्चविंशति-संख्याः पूर्वस्य
भेदाः ॥५॥ तीव्र-मन्द-ज्ञाता-ज्ञातभावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्त
जिनेन्द्र अर्चना // ३०७

द्विशेषः ॥६॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भ-
योग-कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥
निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम् ॥९॥
तत्प्रदोषनिह्व-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥
दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-
स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूत-व्रत्यनुकम्पा-दान सरागसंयमादियोगः
क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघ-धर्म-देवावर्णवादी
दर्शन-मोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥
बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥
अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभाव-मार्दवं च ॥१८॥
निःशीलतत्रतत्त्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमासंयमा
कामनिर्जराबाल-तपांसि देवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता
विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥
दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ
शक्तिस्तस्यागतपसीसाधु-समाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य बहुश्रुत-
प्रवचनभक्तिरावश्यक-परिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति
तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ परात्मनिन्दा-प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च
नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥
विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तम अध्याय

हिंसानृतस्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देशसर्वतोऽणु-
महती ॥२॥ तत्स्वैर्यार्थ भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादान-
निक्षेपण-समित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोध-लोभ-भीरुत्व-
हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि भाषणं च पञ्च ॥५॥ शून्यागार-
विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धिसद्धधर्माविसंवादाः पञ्च ॥६॥
स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर-
३०८ // जिनेन्द्र अर्चना

संस्कार-त्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि
पञ्च ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥ दुःखमेव वा ॥१०॥
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिकक्लिश्यमाना-
विनयेषु ॥११॥ जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ॥१२॥
प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥
अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥१६॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥
निःशल्यो व्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥
दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-
परिमाणातिथि-संविभाग-व्रत-संपन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां
जोषिता ॥२२॥ शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसासंस्तवाः
सम्यग्दृष्टेरीचाराः ॥२३॥ व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥
बन्ध-वधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेश-
रहोभ्याख्यान-कूटलेख-क्रियान्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥ स्तेन-
प्रयोग-तदाहतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपक-
व्यवहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिका परिगृहीतापरिगृहीता-
गमनानंगक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्ण-
धनधान्य-दासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्यतिक्रम-
क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥ आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-
रूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्या-
धिकरणोप-भोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनु-
पस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितो त्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणा-
नादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्त-सम्बन्ध-संमिश्राभिषवदुः-
पक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधान-पर-व्यपदेश-मात्सर्यकालाति-
क्रमाः ॥३६॥ जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-
निदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थ स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधि-द्रव्य-
दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

जिनेन्द्र अर्चना // ३०९

अष्टम अध्याय

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥१॥
 सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृति-
 स्थित्यनुभाग-प्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरण-वेदनीय-
 मोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥४॥ पञ्च-नवद्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वा-
 रिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-
 केवलानाम् ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधि-केवलानां निद्रा-निदानिद्रा-प्रचला-
 प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृह्यश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शन-चारित्र-
 मोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-
 मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषायकषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-
 स्त्री-पुन्नपुंसक वेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-
 विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः ॥९॥ नारक-तैर्यगो-
 नमानुष-दैवानि ॥१०॥ गति-जाति-शरीरांगोपांग-निर्माणबन्धन-संघात-
 संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातातपो-
 द्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-
 पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चै-
 र्नीचैश्च ॥१२॥ दान-लाभभोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥ आदि-
 तस्तिस्मृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम-कोटिकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥
 सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरो
 पमाणयायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादश-मुहूर्तावेदनीयस्य ॥१८॥
 नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥ विपाकोऽनुभवः ॥२१॥
 स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-
 विशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्त-
 प्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥
 अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

३१० // जिनेन्द्र अर्चना

नवम अध्याय

आस्रव-निरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-
 परीषहजय-चारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योगनिग्रहो
 गुप्तिः ॥४॥ ईर्या-भाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तमक्षमा-
 मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तप स्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥
 अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-
 धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थ परिषो-
 ढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारति-स्त्री-
 चर्या-निषद्या-शय्याक्रोशवधयाचनालाभरोग-तृणस्पर्श-मलसत्कार-
 पुरस्कारप्रज्ञाज्ञानाऽदर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसाम्पराय-छद्मस्थवीतराग-
 योश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥
 ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराय योरदर्शनालाभौ ॥१४॥
 चारित्रमोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्याक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः ॥१५॥
 वेदनीये शेषाः ॥१६॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः ॥१७॥
 सामायिक-च्छे दो पस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-
 यथाख्यातमिति चारित्रम् ॥१८॥ अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-
 परित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्त-
 विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥ नव-चतुर्दश-
 पञ्च-द्वि-भेदा यथाक्रमं प्राध्यानात् ॥२१॥ आलोचना-प्रतिक्रमण-
 तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञान-दर्शन-
 चारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्षग्लानगण-कुल-
 संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाभ्यायधर्मो-
 पदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-
 निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त्त-रौद्रधर्म्य-शुक्लानि ॥२८॥ परे
 मोक्ष-हेतू ॥२९॥ आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-
 समन्वाहारः ॥२९॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं
 जिनेन्द्र अर्चना // ३११

(६)

महिमा है, अगम जिनागम की ॥टेक ॥
जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतम की ॥१ ॥
रागादिक दुःख कारन जानै, त्याग बुद्धि दीनी भ्रम की ॥२ ॥
ज्ञान-ज्योति जागी उर अन्तर, रुचि बाढ़ी पुनि शम-दम की ॥३ ॥
कर्मबंध की भई निरजरा, कारण परम पराक्रम की ॥४ ॥
'भागचन्द' शिव-लालच लाम्यो, पहुँच नहीं है जहँ जम की ॥५ ॥

(७)

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ॥टेक ॥
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को प्रकाशा ।
आपा-पराया-भासा, हो भानु के समानी ॥१ ॥
षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया ।
भवफन्द से छुड़ाया, सच्चि जिनेन्द्र वाणी ॥२ ॥
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में ।
ठाड़े हैं मोक्ष-मग में, तकरार मोसों ठानी ॥३ ॥
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता ।
होवे 'सुदर्शन' साता, नहीं जग में तेरी सानी ॥४ ॥

(८)

नित पीज्यो धी धारी, जिनवाणी सुधा-सम जानिके ॥टेक ॥
वीर मुखारविंदतैं प्रकटी, जन्म-जरा भयटारी ।
गौतमादि गुरु-उर घट व्यापी, परम सुरुचि करतारी ॥१ ॥
सलिल समान कलिलमलगंजन, बुधमनरंजन हारी ।
भंजन विभ्रम धूलि प्रभंजन, मिथ्या जलद निवारी ॥२ ॥
कल्याणकतरु उपवनधरिनी, तरनी भवजलतारी ।
बंधविदारन पैनी छैनी, मुक्ति-नसैनी सारी ॥३ ॥

स्व-परस्वरूप प्रकाशन को यह, भानुकला अविकारी ।
मुनिमनकुमुदिनि-मोदनशशिभा, शमसुख सुमन सुवारी ॥४ ॥
जाके सेवत बेवत निजपद, नसत अविद्या सारी ।
तीन लोकपति पूजत जाको, जान त्रिजग-हितकारी ॥५ ॥
कोटि जीभ सों महिमा जाकी, कहि न सके पविधारी^१ ।
'दौल' अल्पमति केम कहै यह, अधम-उधारन हारी ॥६ ॥

(९)

साँची तो गंगा यह वीतरागवाणी ।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी ॥टेक ॥
जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी ।
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी ॥१ ॥
सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी ।
संतचित मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी ॥२ ॥
जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्राणी ।
'भागचन्द' निहचैं घटमाहिं या प्रमानी ॥३ ॥

(१०)

धन्य-धन्य है घड़ी आज की, जिनधुनि श्रवणपरी ।
तत्त्वप्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी ॥टेक ॥
जड़ तैं भिन्न लखी चिन्मूरत, चेतन स्वरस भरी ।
अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, पर में सब परिहरी ॥१ ॥
पाप-पुण्य विधि बन्ध अवस्था, भासी अति दुःखभरी ।
वीतराग-विज्ञानभावमय, परनति अति विस्तरी ॥२ ॥
चाह दाह विनसी बरसी पुनि, समता मेघ झरी ।
बाढ़ी प्रीति निराकुल पद सों, 'भागचन्द' हमरी ॥३ ॥

१. इन्द्र

(१६)

अहो जगत गुरु देव, सुनिये अरज हमारी ।
तुम हो दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी ॥१॥
इस भव बन के माहिं, काल अनादि गमायो ।
भ्रमत चतुर्गति माहीं, सुख नहीं दुख बहु पायो ॥२॥
कर्म महारिपु जोरि, एक न कान धरेजी ।
मन माने दुख देहि, काहू सों नाहिं डरेजी ॥३॥
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावै ।
सुर-नर पशु गति माहिं, बहु विधि नाच नचावै ॥४॥
प्रभु इनको परसंग, भव भव माहिं बुरोजी ।
जे दुख देखे देव, तुमसों नाहिं दुरोजी ॥५॥
एक जनम की बात, कहि न सकों सुनि स्वामी ।
तुम अनंत परजाय, जानत अन्तर जामी ॥६॥
मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे ।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥७॥
ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डास्यो ।
इन्हीं तुम मुझ माहिं, हे जिन अन्तर पास्यो ॥८॥
पाप-पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी ।
तन काराग्रह माहिं, मोहि दियो दुःख भारी ॥९॥
इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियोजी ।
बिन कारन जग बंद्य, बहु विधि वैर लियोजी ॥१०॥
अब आयो तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारो ।
नीति निपुण जिनराय, कीजे न्याय हमारो ॥११॥
दुष्टन देहु निकाल, साधुन को रखि लीजे ।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु ढील न कीजे ॥१२॥

श्री सम्मेदशिखरजी का अर्घ्य

जल गन्धाक्षत फूल सु नेवज लीजिए ।
दीप धूप फल लेकर अर्घ चढाइये ॥
पूजों शिखर सम्मेद सु मन वच काय
ज ० ० ० ।
नरकादिक दुख टरै अचल पद पाय
ज ० ० ० । । ।

श्री कैलाशगिरिजी का अर्घ्य

माघ असित चउदश विधि सैन, हनि अघाति पाई
शि श व द ँ न ।
सुर नर खग कैलाश सुथान, पूजें मैं पूजूं धर ध्यान ॥
ऋषभ देव जिन सिध भये, गिर कैलाश से जोय ।
मन वच तन कर पूजहूँ शिखर नमूं पर सोय ॥

श्री गिरनारजी का अर्घ्य

अष्ट द्रव्य का अर्घ संजोयो, घण्टा नांद बजाई ।
गीत नृत्य कर जजों 'जवाहर', आनन्द हर्ष बधाई ॥
जम्बू द्वीप भरत आरज में, सोरठ देश सूहाई ।
सेसावन के निकट अचल तहं, नेमिनाथ शिव पाई ॥

श्री चम्पापुरजी का अर्घ्य

वासुपूज्य जिनकी छबी, अरुन वरन अविकार ।
देहु सुमति विनती, करुं ध्याऊँ भवदधितार ॥
वासुपूज्य जिन सिद्ध, भये चम्पापुर से जेह ।
मन वच तन कर पूज हूँ, शिखर सम्मेद यजेह ॥

श्री पावापुरजी का अर्घ्य

कार्तिक वदि मावस गये शेष कर्म हनि मोक्ष ।
पावापुरतैं वीर जिन जजूं चरण गुण धोक ॥
महावीर जिन सिद्ध भये पावापुर से जोय ।
मन वच तन कर पूजहूँ शिखर नमूं पर दोय ॥

श्री सोनागिरिजी का अर्घ्य

नंगानंग कुँवर द्वै राजकुमारजू,
मुक्ति गये सोनागिर सों हितकारजू ॥
साढे पाँच करोड़ भये शिवराज जी,
पूजों मन वच काय लहों सुखसागरजी ॥
तिनके चरण जजों मैं मन वच काय के,
भवदधि उतरो पार शरण मैं आय के ॥

श्री नयनागिरिजी का अर्घ्य

पावन परम सुहावनों, गिरि रेशिन्दी अनूप ।
जजहूँ मोद उद धरि अति, कर त्रिकरण शुचिरूप ॥
शुचि अमृत आदि समग्र, सजि वसु द्रव्य प्रिया ।
धारों त्रिजगत पति अग्र, धर वर भक्त हिया ॥

श्री द्रोणगिरिजी का अर्घ्य

फलहोड़ी बडगांव अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ।
गुरुदत्तादि मुनिश्वर जहाँ, मुक्ति गये बन्दो नित वहाँ ॥
जल सु चन्दन अक्षत लीजिए, पुष्प धर नैवेद्य गनीजिये ।

दीप धूप सुफल बहु साजहीं, जिन चढाय सुपातक भाजहीं ॥

श्री सिद्धवरकूटजी का अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत लेय, सुमन महा प्यारी ।
चरू दीप धूप फल सोय, अरघ करों भारी ॥
द्वय चक्री दस कामकुमार, भवतर मोक्ष गये ।
तातैं पूजौं पद सार, मन में हरष ठये ॥

श्री माँगीतुंगीगिरिजी का अर्घ्य

जल फलादि वसु दरब साजके, हेम पात्र भरलाऊँ ।
मन वच काय नमूँ तुम चरना, बार बार सिर नाऊँ ॥
राम हून सुग्रीव आदि जे, तुंगीगिरि थिरथाई ।
कोड़ी निन्यानवे मुक्ति गये मुनि, पूजौं मन वच काई ॥

श्री बाहुबलीस्वामीजी का अर्घ्य

वसुविधि के वश वसुधा सबही, परवश अति दुख पावै ।
तिहि दुःख दूर करन को भविजन, अर्घ जिनाय चढावै ॥
परम पूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी ।
तिनके चरण-कमल को नित प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

श्री मुक्तागिरिजी का अर्घ्य

जल गंध आदिक द्रव्य लेके, अर्घ कर ले आवने ।
लाय चरन चढाय भविजन, मोक्षफल को पावने ॥
तीर्थ मुक्तागिरि मनोहर, परम पावन शुभ कहो ।
कोटि साढे तीन मुनिवर, जहाँ ते शिवपुर लहो ॥

श्री जम्बूस्वामीजी का अर्घ्य

मथुरा नगरी अति सुखदाता, जम्बूस्वामी मुक्ति विधाता ।
तीजे केवल ज्ञानी ध्यावो, सिद्ध स्थान पूजौं निज पावो ॥
चौरासी का मन्दिर भारी, उपवन मांहि महा सुखकारी ।
बड़े उछाह थकी हम पूजें, जाते आनन्द मारग सूझे ॥

श्री खण्डगिरिजी का अर्घ्य

जल फल वसु दरब पुनीत, लेकर अर्घ करूँ ।
नाचूँ गाऊँ इस भांति, भवतर मोक्ष वरूँ ॥
श्री खण्डगिरि के शीश, दशरथ तनय कहै ।
मुनि पंचशतक शिवलीन, देश कलिंग कहैं ॥

श्री कुण्डलपुरजी का अर्घ्य

श्री कुण्डलपुर क्षेत्र, सुभग अति सोहनी ।
कुण्डल सम सुख सदन हृदय मन मोहनो ॥
गिरि ऊपर जिन भवन पुरातन हैं सही ।
निरखि मुदित मन भविक लहत आनन्द मही ॥

श्री पपौराजी का अर्घ्य

अतिशय क्षेत्र प्रधान अति, नाम 'पपौरा' जान ।
टीकमगढ से पूर्व दिश, तीन मील परनाम ॥१॥
साठ अधिक पन्द्रह जहाँ (७५) जिन मन्दिर सुखगार ।
जिन प्रतिमा तिहिं मधिं लसे, चौबीसों दुखहार ॥२॥
चरण कमल उरधार तिहिं, पुनि पुनि शीश नवाय ।
पूजन तिन की रचत हों, कीजे भवि हर्षाय ॥३॥
क्षेत्र पपौरा मधि लसत, चौबीसों जिनराज ।

चरण कमल तिनके सुभग, पूजत हों हर्षाय ॥४॥

श्री तिजाराजी का अर्घ्य

श्री चन्द्र जिनेशं दुख हर लेतं सब सुख देतं मनहारी ।
गाऊं गुणमाला जग उजियाला, कीर्ति विशाला
सुख कारी । ।

श्री महावीरजी का अर्घ्य

जल गन्ध सु अक्षत पुष्पर चरुवर जोर करों ।
दे दीप धूप फल मेलि, आगे अर्घ करों ॥
चाँदनपुर के महावीर, तेरी छवि प्यारी ।
प्रभु भव आताप निवार, तुम पद बलिहारी ॥

श्री जम्बूद्वीप हस्तिनापुरजी का अर्घ्य

शुभ गन्ध वारि अखण्ड अक्षत पुष्प नेवज धूपजी ।
वरदीप उत्तम फल मिलाय बनाय अर्घ अनूपजो ॥
जिननाथ चरणाम्बुज सदा भवि जजों जित हरषायजी ।
भर थार जटित 'जवाहर' निशदिन शुद्ध मनवचकायजी ॥

श्री पद्मपुराजी (बाड़ा) का अर्घ्य

जल चंदन अक्षत पुष्प नेवज आदि मिला ।
मैं अष्ट द्रव्य से पूज पाऊँ सिद्ध शिला ॥
बाड़ा के पद्म जिनेश मंगल रूप सही ।
काटो सब क्लेश महेश मेरी अर्ज यही ॥

श्री राजगिरिजी का अर्घ्य

वसु द्रव्य मिलाये भविमन भाये, प्रभु गुण गाये नृत्य
कराये ।
भव भव दुखनाशा, शिवमग भासा, चित्त हुलासा सुख
कराये । ।
श्री पंचमहागिरि तिन पर मन्दिर शोभित सुन्दर सुखकारी ।
जिन बिम्ब सुदर्शन आनन्द बरसत जन्म मृत्यु भम
दुख हारी । ।

श्री पावागिरिजी का अर्घ्य

स्वर्णभद्र आदि मुनिवर पावागिरी शिखर मजार ।
चेलना नदी तीर के पास मुक्ति गये वन्दो नितपास ॥